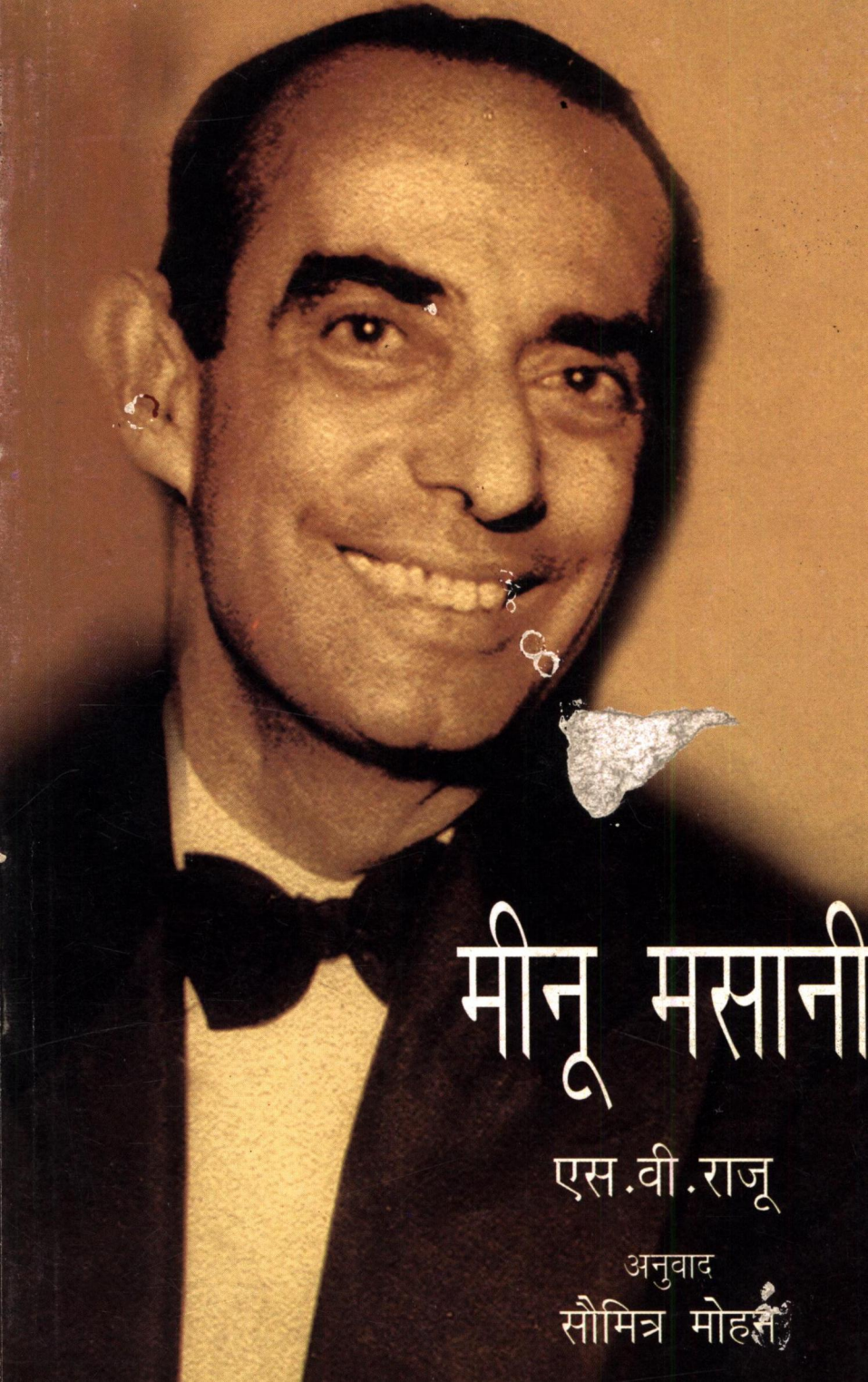


मीनू मसानी

एस.वी.राजू

अनुवाद

सौमित्र मोहन

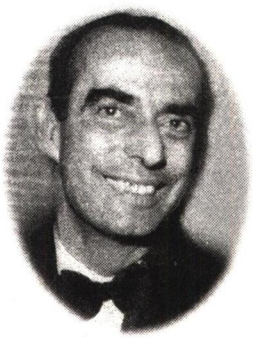
राष्ट्रीय जीवनचरित

मीनू मसानी

एस.वी. राजू

अनुवाद

सौमित्र मोहन



नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 978-81-237-5740-7

पहला संस्करण : 2010 *(शक 1931)*

मूल © एस.वी. राजू

अनुवाद © नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

Minoo Masani *(Hindi)*

रु. 50.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नेहरू भवन,
5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-II वसंत कुंज,
नई दिल्ली-110070 द्वारा प्रकाशित

शीला के लिए
जिन्होंने हर मौके पर
मीनू का साथ दिया

अनुक्रम

	आभार-ज्ञापन	नौ
	भूमिका	ग्यारह
1.	आरंभिक वर्ष	1
2.	स्वतंत्रता संघर्ष में भागीदारी	4
3.	समाजवादी के रूप में बिताए वर्ष	10
4.	साम्यवाद के विरुद्ध अभियान	18
5.	गांधीवादी प्रभाव	26
6.	समाजवाद के बारे में पुनर्विचार	35
7.	आजीविका की तलाश	44
8.	संसद के कांग्रेसी सदस्य के रूप में	53
9.	स्वतंत्र पार्टी का जन्म	64
10.	स्वतंत्र पार्टी का उत्थान और पतन	76
11.	एक आदर्श सांसद	92
12.	जेपी, संपूर्ण क्रांति, आपातकाल और उसके बाद	99

आभार–ज्ञापन

लेखक मुंबई विश्वविद्यालय के राजनीतिशास्त्र के अवकाश-प्राप्त प्रोफेसर डॉ. आर. श्रीनिवासन का उनके दिशा-निर्देश, प्रोत्साहन तथा पांडुलिपि पढ़ने के बाद उसमें बौद्धिक दृष्टि से आवश्यक परिवर्तनों को सुझाने के लिए; सहयोगी श्रीमती कश्मीरा राव का प्रूफ-रीडिंग करने और इसके अलावा एक आम पाठक के रूप में इसका बारीकी से पाठ करने और यह बताने के लिए कि मीनू मसानी के जीवन एवं काम को सुबोध ढंग से प्रस्तुत करने में मैं किस हद तक सफल रहा हूं; अपने टाइपसैटर तथा मित्र और हर कठिन मौके पर काम आने वाले नरेंद्र कोटक का चित्रों की स्कैनिंग एवं पुस्तक लिखने के दौरान मौके-बेमौके किसी बात को पूछने के लिए किए गए टेलीफोन को सहर्ष सुनने के लिए आभार प्रकट करता है। मैं नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के मुख्य संपादक तथा संयुक्त निदेशक डॉ. बलदेव सिंह को भी धन्यवाद देता हूं जिन्होंने मीनू मसानी की जीवन-कथा को व्यापक पाठकों तक पहुंचाने में अपना सहयोग दिया है। प्राकृतिक व मानव-निर्मित बाधाओं के कारण इस पांडुलिपि को पूरा करने में जो देरी होती रही, उसके प्रति उनके सहानुभूतिपूर्ण रवैए की भी मैं बहुत प्रशंसा करता हूं।

भूमिका

यह पुस्तक एक सिद्धांतवादी राजनीतिज्ञ के बारे में है। आज के राजनीतिक वातावरण में यह बात शायद एक विरोधाभास लगे क्योंकि इन दिनों 'राजनीतिज्ञ' शब्द सुनते ही मन में उपहास तथा तिरस्कार का भाव आने लगता है। पर यह स्थिति हमेशा ऐसी नहीं थी और मीनू मसानी की जीवनी के द्वारा हम यही दिखाना चाहते हैं। उनके जीवन तथा काम को हम बीसवीं शताब्दी के अधिकांश हिस्से में फैला देख सकते हैं।

मसानी के व्यक्तित्व की अनेक खूबियां थीं। उन्होंने एक वकील के रूप में अपनी शुरुआत की, पर स्वतंत्रता-संघर्ष में भाग लेने के लिए अपनी वकालत छोड़ दी; युवाओं को संबोधित पुस्तक *ऑवर इंडिया* के लेखक के रूप में उन्हें खूब लोकप्रियता और प्रसिद्धि मिली; एक संसद-सदस्य के रूप में उन्होंने खूब यश प्राप्त किया क्योंकि संसदीय लोकतंत्र के लिए उनमें गहरी आस्था थी; व्यक्ति-स्वतंत्रता के वह घनघोर हिमायती रहे और दादाभाई नौरोजी तथा गोपाल कृष्ण गोखले की उदार परंपरा के एक श्रेष्ठ उदाहरण सिद्ध हुए; वह एक ऐसे बुद्धिजीवी थे, जिनमें मार्क्स से लेकर महात्मा गांधी तक के विचारों को आत्मसात कर लेने की राजनीतिक सूझबूझ थी—समाजवाद से 'स्वतंत्र' विचारधारा तक।

भारत के राजनीतिक वातावरण में ऊंचे पदों पर सुशोभित होने को ही सफलता का आधार मान लिया जाता है। यदि इस मानदंड पर हम मसानी को देखेंगे तो वह अपने दोस्त जयप्रकाश नारायण की तरह एक असफल व्यक्ति ही दिखाई देंगे। पर किसी व्यक्ति की उपलब्धियों का लेखा-जोखा हम इस आधार पर भला क्योंकर करेंगे, जबकि ऐसा व्यक्ति

जान-बूझकर उन सभी मौकों को निरस्त करता रहा हो जिन्हें स्वीकार करने का मतलब अपने सिद्धांतों से समझौता करना लगे। इसका एक संकेत श्रीप्रकाश (कांग्रेस पार्टी के एक प्रतिष्ठित सदस्य) और नेहरू के बीच हुई तकरार संबंधी मसानी की उस रिपोर्ट में मिलता है कि जब श्रीप्रकाश ने कश्मीर के विभाजन का सुझाव दिया तो नेहरू ने किस तरह सख्त भाषा का प्रयोग कर उन्हें चुप करा दिया था। श्रीप्रकाश उन दिनों पाकिस्तान में भारत के उच्चायुक्त थे, फिर भी, उन्होंने इस फटकार को चुपचाप निगल लिया और नेहरू को नाराज करने के बजाय अपने पद पर बने रहने को उचित समझा। श्रीप्रकाश ने अपना यह अनुभव मसानी को तब सुनाया था, जब वह तमिलनाडु के गवर्नर थे। इस पर मसानी की टिप्पणी थी : "यह भारत की सबसे बड़ी त्रासदी का एक उदाहरण था—उच्च पद पर आसीन व्यक्ति के सामने खड़े होने की असमर्थता का उदाहरण!"

मसानी 1930 के दशक के आरंभ में ही नेहरू के बहुत नजदीक आ गए थे और उनको, जयप्रकाश नारायण तथा अच्युत पटवर्धन की तरह, नेहरू के करीबी दोस्तों के रूप में देखा भी जाने लगा था। स्वतंत्रता के तुरंत बाद के वर्षों में मसानी तत्कालीन कांग्रेस प्रतिष्ठान के अभिन्न अंग थे। मसानी से आर्थिक तथा विदेश नीति संबंधी मामलों में मतभेद के बावजूद नेहरू ने उन्हें एक विशेषज्ञ की हैसियत से संयुक्त राष्ट्र संघ अल्पसंख्यक भेदभाव निरोधक तथा संरक्षा उप-समिति के लिए नामित किया था। जब मसानी की सोवियत संघ के प्रतिनिधि से, जिन्होंने सोवियत संघ में अल्पसंख्यकों की समस्याओं को सुलझा लेने का दावा किया था, झड़प हो गई तो उन्हें अच्छी तरह पता था कि अपने इस रवैए से वह नेहरू को नाराज कर रहे थे। उनका यह अंदेशा ठीक साबित हुआ, जब उन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ की उस उप-समिति से हटा दिया गया। अपनी आत्मकथा के पहले भाग में मसानी ने इस घटना के संदर्भ में लिखा है : "धारा के विरुद्ध तैरना मेरी आदत हो गई थी और यह बात मेरे स्वभाव का अंग भी थी। अलबत्ता इस बात को सोचते हुए मैं हैरान जरूर होता रहा हूं कि बाद की जिंदगी में मेरी इस आदत ने, खासतौर पर मेरी राजनीतिक गतिविधियों को, किस हद तक प्रभावित किया होगा।"

जब किसी व्यक्ति को अपने लिए सत्ता में आने के अवसर कम लगने लगें, तब उसके लिए विपक्ष में बने रहना ही सरल होता है। लेकिन सत्ता के नजदीक रहकर भी, इस अवसर से खुद को वंचित करना कि कहीं सिद्धांतों से समझौता न करना पड़े, ऐसी स्थिति को स्वीकार करने के लिए साहस तथा उच्च स्तर की ईमानदारी जरूरी होती है। मसानी में इस तरह के गुण भरपूर मात्रा में थे।

अनेक वर्षों बाद जब उन्हें एक राजनीतिक पार्टी की नीतियों की रूपरेखा बनाने का अवसर मिला, तब उन्होंने इसमें ऐसे अनेक सिद्धांतों को शामिल किया जिनमें उनकी गहरी आस्था थी और संयोग से जिनसे सी. राजगोपालाचारी अथवा राजा जी भी सहमत थे। राजा जी भी धारा के विरुद्ध तैरने में विश्वास करते थे और गांधी जी से अक्सर उनका मतभेद हो जाया करता था। उदाहरण के लिए राजा जी ने गांधी जी द्वारा शुरू किए गए भारत छोड़ो आंदोलन को समर्थन देने के बजाय कांग्रेस को छोड़ना ही उचित समझा।

मसानी राजनीतिज्ञ के साथ-साथ बुद्धिजीवी भी थे। स्वतंत्रता-पूर्व के भारत में, राजनीतिज्ञों के संदर्भ में, यह एक आम बात थी। लगभग ये सभी लोग—दादाभाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, गोपाल कृष्ण गोखले, श्रीनिवास शास्त्री, लोकमान्य तिलक, महादेव गोविंद रानाडे, महात्मा गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू (यह सूची बहुत लंबी बनाई जा सकती है)—या तो लेखक या अध्यापक या फिर दोनों ही थे। दुर्भाग्यवश, स्वतंत्रता के बाद भारत में उभरने वाले राजनीतिज्ञों में ये उच्च गुण दिखाई नहीं देते बल्कि इनके ऐसे विचित्र गुण दिखते हैं, जो न केवल इनसे हटकर हैं किंतु निंदनीय भी हैं।

मसानी ने अल्पजीवी स्वतंत्र पार्टी के जिन सिद्धांतों को स्वरूप प्रदान किया था, इसके लिए उन्हें राजा जी का आशीष प्राप्त था। वस्तुतः ये आदर्श इतने उच्च स्तर के थे कि भारतीय संदर्भ में यह संगठन फलतः आगे विकास नहीं कर सका।

ये आदर्श थे : श्रमिक संघों तथा विद्यार्थी आंदोलनों में स्वतंत्र पार्टी का मोर्चा बनाने पर रोक। राजनीतिक पार्टियों द्वारा श्रमिकों के संदर्भ में

अनुचित लाभ उठाने की मनाही तथा विद्यार्थियों को अपने अध्ययन को वरीयता देने का आग्रह। सत्याग्रह, बंद तथा इसी तरह के अन्य विरोधों में भागीदारी नहीं करना क्योंकि पार्टी की हर गतिविधि कानूनसम्मत होनी चाहिए। साथ ही सभी तरह के विरोध कानून की सीमाओं के अधीन रहकर ही किए जाएं। भारत की राजनीति के संदर्भ में ये सभी नियंत्रण असफल होने के नुस्खे थे।

मसानी के लिए उचित साधनों का बहुत महत्व था और इन्हें अपनाने की प्रक्रिया में यदि संगठन विफल हो जाता है तो वे इसके लिए चिंतित नहीं होते थे। उनका तो यह भी मानना था कि संगठन अपने आप में साध्य नहीं है बल्कि लक्ष्य को पाने का साधन मात्र है। स्वतंत्र पार्टी के संदर्भ में अच्छा शासन और संसदीय लोकतंत्र को सुदृढ़ करना ही लक्ष्य था।

मुंबई विश्वविद्यालय के राजनीतिशास्त्र के प्रोफेसर (अब अवकाश-प्राप्त) डॉ. आर. श्रीनिवासन ने मसानी के 80वें जन्मदिवस के अवसर पर *फ्रीडम एंड डिस्सेन्ट* शीर्षक से एक अभिनंदन ग्रंथ का संपादन किया था। इस ग्रंथ की भूमिका में उन्होंने मसानी के योगदान का मूल्यांकन करते हुए लिखा था :

> कई दृष्टियों से, मीनू मसानी, लोकनायकों की विलुप्त होती प्रजाति के व्यक्ति कहे जा सकते हैं और अगली पीढ़ी शायद ही उन जैसे व्यक्ति से कभी मिल पाए। वस्तुतः उन्हें उदार बुद्धिजीवियों के उस बचे-खुचे समूह का व्यक्ति समझना चाहिए जिन्होंने आधुनिक भारतीय राजनीति के बीते युग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। गांधीवादी युग से पहले का उदारतावादी पंथ राजनीति में वैयक्तिक बोध, आदर्शों तथा पारस्परिक आदान-प्रदान को अपनाने के लिए प्रशिक्षित था। रानाडे, जी.वी. जोशी और गोखले के बीच के रिश्ते सर्वज्ञात हैं; इसी तरह के वैयक्तिक संबंध औरों के संदर्भ में भी अज्ञात नहीं थे। गांधी सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी के सदस्य बनने से चूक गए थे; फिरोज़शाह, वाचा, गोखले, कृष्णास्वामी अय्यर, वी.एस. श्रीनिवास शास्त्री में परस्पर गहरी दोस्ती थी। हां, मसानी की पीढ़ी का, पहले की उदारतावादी पीढ़ी से, कोई

सीधा संपर्क नहीं था। वस्तुतः उनकी पीढ़ी बौद्धिक रूप से पहले की पीढ़ी से सहमत नहीं थी और उनके पूजा के स्थल अलग थे।

उदारतावादी परंपरा कुछ इस तरह की रही है कि उसने हमेशा विद्यमान राजनीतिक संस्थानों के पूर्ण उपयोग पर बल दिया और साथ ही इन संस्थानों के सृजनात्मक उपयोग, राजनीतिक प्रक्रिया में नए लोगों की भागीदारी एवं नए मूल्यों से परिचित करवाने तथा नागरिक राजनीति को सहकारी प्रयत्न के रूप में लाभ पहुंचाने के बारे में सोचा। वह जितने वर्ष भी संसद के सदस्य रहे, वह सारी अवधि, उनके राजनीतिक जीवन का न केवल एक शानदार दौर था बल्कि भारतीय संसद के इतिहास का भी एक महत्वपूर्ण अध्याय था। उन्होंने सार्वजनिक समस्याओं को उसी शिद्दत से उठाया, जिस शिद्दत से गोखले एक दशक पहले उठाया करते थे लेकिन उन पर गोखले जैसी बंदिशें नहीं थीं क्योंकि मसानी स्वतंत्र गणतंत्र में अब एक उच्चतम राजनीतिक अधिकारी के समकक्ष थे।

जो राजनीति के जानकार हैं, वे मसानी तथा उनके योगदान से खूब परिचित हैं; बाकी के अनेक लोगों के लिए मसानी की कुछ और ही छवि है और वे उन्हें *ऑवर इंडिया* तथा अन्य पुस्तकों के लेखक के रूप में जानते हैं जिन्हें उन्होंने अपनी स्कूल-शिक्षा के समय अंग्रेजी अथवा अनुदाद में पढ़ा था। स्कूल के जिन हजारों-लाखों विद्यार्थियों ने पहली बार नागरिक मूल्यों की शिक्षा पाई थी और वह भी पूर्ण मनोयोग से, उन सभी में नई चेतना तथा जागरूकता की लहर दौड़ गई थी। मसानी में अपने ढंग की सृजनात्मक सुप्त प्रतिभा थी और मूलतः वह एक शिक्षाशास्त्री कहे जा सकते हैं। जटिल विचारों को भी सहज ढंग से कह पाने की उनकी क्षमता को देखकर उनसे ईर्ष्या करने को मन करता है। हमारे राजनीतिक नेताओं में केवल मसानी ही ऐसे हैं, जो युवा पीढ़ी से समानुभूति बना सकने में सक्षम रहे हैं। उनका यह विरल गुण राजा जी के गुण के समान है, जो विभिन्न पीढ़ियों से घनिष्ठता स्थापित करने में सफल रहते थे।

उदारतावादियों, गांधी और मसानी में जो बात समान रूप से दिखाई देती है, वह है सार्वजनिक जीवन की चेष्टा पर बल देना। इन सभी

ने राजनीति की पवित्रता पर जोर दिया और ऐसा तभी हो सकता है, जब किसी की आंखों के सामने ऐसा हो रहा हो। राजनीति के इस खुलेपन की वजह से कुछ अन्य मूल्यों पर स्वमेव बल दे दिया जाता है, और मसानी की विचारधारा में इनका केंद्रीय महत्व था—ये मूल्य हैं : पार्टी को छोड़ने, अपने विश्वासों को चुनने और उस पर दृढ़ता से टिके रहने की स्वतंत्रता।

मसानी का अधिकांश जीवन सरकार में रहने के बजाय विपक्ष से जुड़े रहकर बीता था। आधुनिक भारत के वह एक उदारतावादी व्यक्ति थे और इस अर्थ में उनकी प्रशंसा तथा स्मरण किया जाना चाहिए।

डा. श्रीनिवास ने *ऑवर इंडिया* का इस संदर्भ में उल्लेख किया है कि इससे मसानी को खूब प्रसिद्धि तथा धन मिला। अपने 92 वर्ष के जीवन में, जिसमें से 60 वर्ष सार्वजनिक जीवन के रूप में बीते थे, मसानी ने राजनीति से तीन बार संन्यास लिया और हर बार उन्होंने बच्चों के लिए पुस्तकों का सृजन किया। *ऑवर इंडिया* उनके पहले संन्यास का सृजन है; *ऑवर ग्रोइंग ह्यूमन फैमिली* दूसरे संन्यास और दो खंडों में प्रस्तुत संस्मरण *वी इंडियन्स* उनके तीसरे संन्यास की रचना है।

मसानी की श्रेष्ठ कृति तो *ऑवर इंडिया* ही सिद्ध हुई। 1940 में पहली बार प्रकाशित इस कृति की दस लाख से अधिक प्रतियां बिक चुकी हैं और भारत की लगभग सभी भाषाओं में इसका अनुवाद प्रकाशित हो चुका है। अपने संस्मरणों में इस पुस्तक का उल्लेख करते हुए मसानी ने लिखा है, "यह पुस्तक बच्चों के लिए आर्थिक भूगोल की प्रारंभिक पुस्तक की तर्ज़ पर लिखी गई है। *ऑवर इंडिया* पुस्तक में भारतवासियों के राष्ट्रीय गौरव को अभिव्यक्ति मिली है और यह उनके असंतोष को भी उजागर करती है। इस पुस्तक ने मेरा बहुत हित किया है। एक समग्र पीढ़ी *ऑवर इंडिया* पढ़कर बड़ी हुई है और आगे चलकर स्कूलों तथा कालेजों में इसे पाठ्यपुस्तक के रूप में पढ़ाया जाता रहा है।" बच्चों के लिए लिखी गई उनकी अगली पुस्तक थी *ऑवर ग्रोइंग ह्यूमन फैमिली*। मसानी इसे *ऑवर इंडिया* से बेहतर पुस्तक मानते थे लेकिन बिक्री के लिहाज़ से यह उतनी कामयाब नहीं रही।

उन्होंने बच्चों के लिए दो और पुस्तकें लिखी थीं : *पिक्चर ऑफ अ प्लैन* और 1989 में प्रकाशित उनकी अंतिम पुस्तक *वी इंडियन्स*। उनकी रचनाओं की संपूर्ण सूची इस पुस्तक के अंत में दी गई है।

मसानी संस्थाओं की स्थापना करने के भरपूर हिमायती रहे। उनका एक प्रसिद्ध कथन है, "सच को भी पंखों की जरूरत होती है।" जब कभी सार्वजनिक जीवन में कुछ करने की उन्हें जरूरत महसूस हुई, तो अपने उद्देश्य को स्पष्ट करने के लिए उससे संबद्ध संस्था की स्थापना करने में उन्होंने बिल्कुल संकोच नहीं किया और उस संस्था के माध्यम से अपने संदेश का खूब प्रसार भी किया।

उन्होंने जो संस्थाएं स्थापित की थीं, उनमें थीं : साम्यवादियों की विनाशक गतिविधियों से जुड़ी सूचनाओं के प्रसार के लिए नवंबर 1950 में स्थापित 'डेमोक्रेटिक रिसर्च सर्विस'– डीआरएस (जनतांत्रिक शोध सेवा); तथा नवंबर 1951 में स्थापित 'इंडियन कमेटी फॉर कल्चरल फ्रीडम'– आईसीसीएफ (सांस्कृतिक स्वतंत्रता की भारतीय समिति) जिसका उद्देश्य बुद्धिजीवियों के बीच सोवियत प्रोपेगंडा का विरोध करने के लिए बुद्धिजीवियों, कवियों और लेखकों के अंतर्राष्ट्रीय आंदोलन में सहयोग देना था; उनके द्वारा 1964 में स्थापित तीसरी संस्था थी 'इंडियन लिबरल ग्रुप' (भारतीय उदारतावादी समूह) जिसका उद्देश्य उदारतावाद के सिद्धांतों तथा दर्शन का प्रचार करना और स्वतंत्र पार्टी के चिंतक की भूमिका अदा करना था; उनके द्वारा 1968 में स्थापित चौथी संस्था थी 'लेस्ली साहनी प्रोग्राम' (एलएसपी) जिसका उद्देश्य एक पाठ्यक्रम के अंतर्गत प्रजातंत्र का प्रशिक्षण देना था और इसमें शामिल था नेतृत्व, नागरिकता और उदारतावादी लोकतंत्र के सिद्धांतों का शिक्षण। 1985 में उन्होंने अपनी अंतिम संस्था 'प्रोजेक्ट फॉर इकनॉमिक एजूकेशन' स्थापित की थी, जो एक अन्य संस्था एलएसपी का ही विस्तार थी। इसका लक्ष्य था आम आदमी को आर्थिक विषयों पर, खासतौर पर उदार अर्थव्यवस्था के संदर्भ में, शिक्षित करना।

मसानी में ऐसी अनेक खूबियां थीं, जिनकी खूब प्रशंसा की जानी चाहिए किंतु राजनीति के क्षेत्र से जुड़े अधिकांश लोगों ने इन्हें कभी नहीं सराहा। उदाहरण के लिए, समय तथा पाबंदी संबंधी गुण। मुलाकात के

नियत समय से दो मिनट की देरी से पहुंचने पर भी बुरा-भला सुनना पड़ सकता था। मिलने वाले व्यक्ति की हैसियत चाहे जो हो, उन्हें इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था। पहले से समय लिए बिना कोई व्यक्ति उनसे मिल नहीं सकता था। भारत में राजनीतिक पार्टियों के नेताओं के लिए लोगों के साथ ऐसा बर्ताव करना व्यावहारिक नहीं माना जाता। यदि कुछ लोग पहले से समय नियत किए बिना उनसे मिलने चले आते थे, तो वे उन पर झुंझला उठते थे और समय के महत्व पर उनको लेक्चर सुनना पड़ जाता था। भारत में यह आम बात है कि जनसभाओं के वास्तविक समय के बजाय काफी पहले के समय की घोषणा कर दी जाती है। अतः सभी लोग मानकर चलते हैं कि यदि जनसभा का समय 5 बजे शाम घोषित किया गया है तो यह 5.30 बजे या हो सकता है 6 बजे शुरू हो। लेकिन मसानी के लिए ऐसा नहीं था। वह घोषित समय से पांच मिनट पहले सभा-स्थल पर पहुंच जाते थे और यदि सभा समय पर शुरू नहीं होती थी तो वह सचमुच फट पड़ते थे।

सभापति के रूप में वह नियम के बड़े पक्के थे। उनकी सभा में हर किसी को बोलने का अवसर तो जरूर मिलता था लेकिन निर्धारित समय का पालन वह बड़ी सख्ती से करवाते थे, भले ही वक्ता की हैसियत कुछ भी हो। यदि कोई वक्ता मूल विषय से भटककर अधिक समय लेने लगता तो मसानी उसे बीच में ही टोक देते और मूल विषय पर बोलने के लिए कहते। लोगों को उनकी यह आदत अक्सर पसंद नहीं आती थी।

मसानी का एक और खास गुण था और हममें से अधिकांश में इसका अभाव दिखाई देता है– विचारार्थ विषयों और व्यक्तियों में घालमेल न करने का गुण । उदाहरण के लिए, एक बार की बात है कि स्वतंत्र पार्टी के उपाध्यक्ष, के.एम. मुंशी, से किसी विषय पर उनकी घोर असहमति हो गई। इससे नाराज होकर मुंशी वहां से उठकर बाहर चल दिए तो मसानी दौड़कर उनके पीछे गए और उन्हें मनाकर वापिस ले आए। बैठक समाप्त होने के बाद मैंने मुंशी को मसानी के स्वास्थ्य के लिए चिंता प्रकट करते हुए देखा। यह कभी खुश कभी नाराज हो जाने का मामला नहीं था बल्कि विषय के अनुकूल मन को साध लेने का मामला था। दुर्भाग्यवश उनकी

यह आदत सबको पसंद नहीं आती थी और लोग अक्सर 'वह बहुत टेढ़े आदमी हैं' या फिर 'वह बहुत घमंडी हैं' जैसे वाक्यों से उनके बारे में अपना मंतव्य देते थे। मसानी निस्संदेह 'टेढ़े आदमी' तो थे, पर घमंडी बिल्कुल नहीं थे बल्कि एक दृढ़-निश्चयी व्यक्ति थे। वह अपनी प्राथमिकताओं को लेकर, अपने उद्देश्यों को लेकर एकदम खरे थे और अपनी बात को स्पष्ट रूप से और बिना किसी संकोच के प्रकट कर देते थे। उन्होंने ऐसी कोशिश कभी नहीं की कि लोग उन्हें पसंद करें।

इसके अलावा, वह ऐसी किसी भी कार्रवाई की अनुमति नहीं देते थे, जो पार्टी की नीतियों या निर्णयों के विरुद्ध जाती हो, जब तक कि किसी के पास निर्धारित नीति से हटकर काम करने के ठोस कारण न रहे हों। ऐसे ठोस कारणों के बिना यदि कोई सदस्य ऐसी कार्रवाई कर डालता तो उसके खिलाफ सख्त अनुशासनात्मक कदम उठाए जाते थे—भले ही ऐसे सदस्य की पार्टी संगठन में कितनी भी ऊंची स्थिति क्यों न हो।

मसानी की 80वीं वर्षगांठ के अवसर पर प्रकाशित पुस्तक के लिए जे.आर.डी.टाटा ने एक लेख लिखा था। इसमें उन्होंने मसानी से संबंधित कुछ बहुत ही रोचक बातें लिखी हैं :

> 1941 में उनके टाटा कंपनी में आने से पहले तक मैं उनको नाम से तथा एक ऐसे विवादास्पद समाजवादी राजनीतिज्ञ के रूप में जानता था जिसने शुरुआत तो साम्यवाद के एक उग्र समर्थक के रूप में की थी, लेकिन बाद में वह उतने ही उग्र साम्यवाद-विरोधी बन गए थे और इसके बाद उन्होंने खुद को पक्का गांधीवादी तथा लोकतंत्रवादी कहना शुरू कर दिया था। उनके इस रवैए से बहुत सारे लोग हैरान-परेशान हो गए या फिर उनसे नाराज हो गए जिनमें राजनीतिक साथी तथा अनेक पार्टियों एवं संगठनों के समानधर्मा लोग भी शामिल थे। इन लोगों ने उन्हें सीधे खतरनाक क्रांतिकारी अथवा पक्षत्यागी अथवा अवसरवादी मान लिया हालांकि उनकी बहस करने की क्षमता, सत्यनिष्ठा और संगठन संबंधी उनकी योग्यताओं पर उन्होंने कभी कोई संदेह प्रकट नहीं किया।
>
> उनके व्यक्तित्व और राजनीतिक दर्शन के ये अंतर्विरोधी पहलू

बड़े दिलचस्प लगे थे और मुझ जैसे अराजनीतिक व्यक्ति को ये किसी जन्मजात विद्रोही के ही लक्षण लगते थे। वह रूसी क्रांति को उन्नीसवीं शताब्दी के पूंजीवाद से उत्पन्न घोर अन्याय एवं निर्लज्ज उपनिवेशवाद से मुक्ति के प्रभात के रूप में देखते थे। इसके बावजूद वह इतने मेधावी थे कि उन्हें मार्क्सवादी द्वंद्ववाद अपने संपूर्ण रूप में स्वीकार्य नहीं था। हां, अपने समय के अन्य स्वप्नद्रष्टाओं की तरह, जिनमें जवाहरलाल नेहरू जैसे व्यक्ति भी शामिल थे, वह भी मानते थे कि मार्क्सवाद और स्वतंत्रता साथ-साथ बने रह सकते हैं। प्रथम विश्व युद्ध के समय मीनू मसानी की इंग्लैंड के युवाओं में व्याप्त मार्क्सवादी सरगर्मियों से निकटता और फिर स्वतंत्रता-संघर्ष की चिंताओं व छटपटाहट के साथ-साथ तत्कालीन भारत की आर्थिक असमानता की स्थितियों को देख लेने के बाद उनके भाग्य में भारतीय राजनीति का समुद्री-पक्षी बनना लिखा था और वह बने भी।

भारतीय राजनीति को लेकर मेरा खुद का भी मोहभंग हो चुका था। समाजवाद की भ्रांत धारणा को आंख मूंदकर स्वीकार करने के अलावा इस राजनीति का लक्ष्य सत्ता को हथियाना और उसमें बने रहना हो गया था। लेकिन मीनू उन चंद लोगों में से एक थे जिनके राजनीतिक सिद्धांतों से असहमति के बावजूद मैं उनकी प्रशंसा व आदर करता था। मुझे उनका मार्क्सवाद को त्याग देना समझ में आता था हालांकि पहले वह इसके घोर समर्थक रहे थे। मैं उनके इस साहस तथा ईमानदारी का कायल था, जब उन्होंने अपनी गलती को खुले मन से मान लिया। उन्हें लेकर मेरे कुछ सहयोगियों तथा मित्रों के मन में संदेह था। लेकिन मुझे उनके बारे में कोई संकोच नहीं हुआ, जब उन्होंने राजनीति को त्यागकर 1941 में 'टाटा' में आने का फैसला किया था। मैंने उनका स्वागत किया था। मीनू ने हमारे यहां जो सोलह वर्ष बिताए थे, उस दौरान मेरा उनके प्रति आदर व प्यार बढ़ा ही था। जब-जब मैं उनके निकट आया और मैंने उनके विचार सुने व उनकी रचनाओं को पढ़ा, तब-तब मुझे यह बात सोचकर बड़ी हैरानी हुई कि उन जैसे बुद्धिमान, सच्चरित्र और गलत बात से समझौता न करने वाले व्यक्ति को भारत

के उच्च नेतृत्व का मौका नहीं दिया गया...

हालांकि हम दोनों की सोच समान 'वेवलैंथ' पर नहीं होती थी, पर मिलती-जुलती जरूर होती थी। हम दोनों स्वभाव से अधीर व्यक्ति थे, इसके बावजूद जिस तेजी से वह मुझे निर्णय लेने के लिए कहते, मुझे कभी-कभार इसमें अड़चन जरूर महसूस हुई, पर निर्णय अंततः तेजी से ही होते थे—संभावित उलझनों एवं परिणामों को ध्यान में रखते हुए।

यद्यपि दो मामलों में एक-दूसरे से सहमति को लेकर हमें कभी कोई उलझन नहीं हुई। पहला यह कि उद्योगपतियों को अपने शेयरहोल्डरों, उपभोक्ताओं, श्रमिकों तथा समाज के संदर्भ में अपना सामाजिक दायित्व एक ट्रस्टी की तरह निभाना चाहिए जिसे जमशेदजी टाटा ने शुरू से ही अपनी फर्म का दर्शन बना लिया था; और दूसरा यह कि प्रबंधन तथा श्रमिकों के संदर्भ में सही मायने में ऐसी भागीदारी को विकसित किया जाना चाहिए, जो परस्पर विश्वास पर आधारित हो।

मीनू के चरित्र की एक बड़ी खूबी यह है कि उन्हें मानवीय संबंधों की गहरी समझ है, जो एक 'भूतपूर्व' उग्र राजनीतिक कार्यकर्ता के संदर्भ में अस्वाभाविक लगती है। कुछ भी कहें, मीनू मसानी पहले, और आज भी, एक असाधारण व्यक्ति हैं जिनकी प्रतिभा तथा चरित्र को दुर्भाग्यवश भारत ने ठीक से पहचाना नहीं और न ही उसका कोई उपयोग किया, जो अन्यथा देश के लिए अत्यंत लाभकर होता।

मैं अपनी इस भूमिका को एक निजी संदर्भ से समाप्त करना चाहूंगा। मसानी से मेरा मेलजोल दिसंबर 1959 में शुरू हुआ, जब वह स्वतंत्र पार्टी के महासचिव नियुक्त हुए थे। फिर पार्टी के केंद्रीय कार्यालय का प्रमुख होने के नाते, तत्पश्चात उनके द्वारा स्थापित अनेक स्वैच्छिक संस्थाओं के प्रबंधन के सिलसिले में, जिनमें उनके द्वारा संपादित जर्नल *फ्रीडम फर्स्ट* भी शामिल था, मैं उनके नजदीक आया।

एक बात पहले ही स्पष्ट कर दूं, उनके साथ काम करना आसान नहीं था। वह अपने साथ काम करने वाले लोगों से कसकर काम तो लेते

ही थे, कभी-कभी कुछ ज्यादती भी कर देते थे। उनके प्रभुत्व को जो चुपचाप सहन कर लेते थे, वे वहां ज्यादा समय टिक नहीं पाते थे। पर जो लोग निश्शंक हो उनको जवाब देते थे, उनका वह आदर करते थे। (यहां श्रीप्रकाश के उस प्रसंग का स्मरण कर लें, जहां उन्होंने बड़े लोगों के आगे भारतीयों के दब्बू बन जाने की निंदा की है।) मुझे कम-से-कम तीन ऐसे मौके अच्छी तरह याद हैं, जब मैंने गुस्से से भरकर वहां का काम छोड़ देने की धमकी दे डाली थी। पर हर बार उन्होंने इस बात के लिए पश्चाताप किया और लिखित रूप से माफी मांगी थी।

किसी को भी कुंठित कर देने वाली उनकी एक आदत यह थी कि हर चीज को वह सैद्धांतिक जामा पहना देते थे। स्वतंत्र पार्टी के ऐसे अनेक उच्च नेता थे, जो मसानी को 'शुद्धतावादी' कहकर उनकी आलोचना किया करते थे। ऐसे लोगों में से एक थे एन. दांडेकर। सेवानिवृत्त आईसीएस अधिकारी दांडेकर स्वयं भी बहुत योग्य व्यक्ति थे। उन्होंने एक बार मुझे बताया था और यह बात मैं अपनी स्मृति के आधार पर ही उद्धृत कर रहा हूं, "बेशक मीनू श्रेष्ठ बुद्धि के व्यक्ति हैं, पर क्या इसके लिए उनका हठधर्मी होना जरूरी है? क्या उन्हें यह अहसास नहीं कि सफेद और काले के बीच धूसर भी होता है? क्या वह भूल गए हैं कि हम भारत में काम कर रहे हैं, न कि इंग्लैंड या अमेरिका में?" मीनू के अनेक प्रशंसकों तथा मित्रों की भी यही राय थी। यह एक सचाई है। यदि उन्होंने धूसर को भी देखा होता तो उन्हें तीन-तीन बार राजनीति छोड़नी नहीं पड़ती।

मैं कभी-कभी यह सोचकर हैरान होता हूं कि किसी चमत्कार के कारण यदि स्वतंत्र पार्टी दिल्ली की सत्ता को हथिया लेती, तब क्या होता? मुझे पक्का यकीन है कि तब हम मसानी को सत्ता पक्ष के बजाय प्रतिपक्ष की तरफ बैठा पाते! जब कोई पार्टी सत्ता में आ जाती है, उसकी सरकार तब समझौते करने लगती है और पार्टी के कार्यक्रम तथा नीतियां क्षीण पड़ जाती हैं। ऐसी स्थिति में मसानी ने किसी छोटे-मोटे परिवर्तन अथवा मामूली संशोधन के लिए अपनी स्वीकृति तो जरूर दे दी होती किंतु किसी भी समझौते के लिए मना कर दिया होता और वह सरकार से बाहर आ गए होते। जयप्रकाश नारायण के अलावा किसी और व्यक्ति को मैंने पद के प्रति इतना निरासक्त नहीं देखा, वह भी तब, जब इसके दस्तूर के लिए सिद्धांतों को

त्यागना पड़े। इसका एक उदाहरण अल्पसंख्यक आयोग की अध्यक्षता से मसानी के त्यागपत्र देने की घटना के रूप में भी देखा जा सकता है क्योंकि जिस सरकार ने उन्हें इसके लिए नामित किया था, वही आयोग के विचारार्थ विषयों से दूर हट रही थी।

सार्वजनिक जीवन में जो एक बात विशिष्ट बनकर स्थापित होनी चाहिए थी—विशेष रूप से स्वतंत्रता के पश्चात के भारत में (एक बार फिर जयप्रकाश नारायण के उदाहरण को अपवाद मानते हुए), वह थी आर्थिक सत्यता और बौद्धिक ईमानदारी। यही दो बातें मसानी को 'नेता' होने के अयोग्य बना देती हैं और उन्हें औरों से अलग कर भारत के एक विलक्षण नागरिक के रूप में स्थापित करती हैं।

1

आरंभिक वर्ष

आठवीं शताब्दी के मुस्लिम हमलावरों के धार्मिक उत्पीड़न से परेशान होकर पारसी धर्मानुयायिओं को अपना देश, पर्शिया, छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा था और इन लोगों ने भारत में शरण ली थी। ये शरणार्थी पर्शिया के पर्स के मैदानों से आए थे, अतः ये पारसी कहलाए। इनमें से अनेक लोगों ने पर्शिया के मसान से अपनी समुद्री-यात्रा शुरू की थी और ये गुजरात के सन्जान क्षेत्र में उतरे थे। ये मसानी अथवा मसान से आए लोग पुरोहित वर्ग से थे।

अपने अन्य पारसी भाइयों की तरह मसानी भी गुजरात के नवसरी क्षेत्र में बस गए। इनके एक पूर्वज पेस्तोनजी बंबई में ग्रेट इंडियन पिनिनस्यूलर रेलवे (जो कभी जीआईपी नाम से प्रसिद्ध था और आजकल इसे सेंट्रल रेलवे कहते हैं) में 100 रुपये माहवार के वेतन पर हैड टाइमकीपर के रूप में काम करते थे। उनके लड़के रूस्तम मसानी लेखक और पत्रकार थे और वह बांबे म्यूनिसिपल कारपोरेशन के सेक्रेटरी भी रहे थे और बाद में यूनिवर्सिटी ऑफ बांबे के कुलपति बने। वह साहित्यिक रुचि के व्यक्ति थे और उन्होंने अनेक विषयों पर लेखन किया था। ब्रितानी औपनिवेशिक शासकों ने उन्हें 'नाइट' की उपाधि से सम्मानित भी किया था लेकिन कुछ वर्षों बाद, 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन को दबाने के लिए किए गए ब्रितानी दमन तथा महात्मा गांधी की गिरफ्तारी के विरोध में, उन्होंने अपना नाइटहुड सम्मान लौटा दिया था।

रूस्तम मसानी तथा उनकी पत्नी मनिजेह से चार संतानें हुईं—मीनू, केकी, मेहर और पेसी। हालांकि ये लोग अमीर नहीं थे, फिर भी, अपने बच्चों को उन दिनों उपलब्ध सर्वोत्तम शिक्षा दिलवाने बल्कि विदेश में शिक्षा दिलवाने की खातिर उन्होंने निजी सुखों तक की कुर्बानी दे दी थी। परिणामस्वरूप उनकी चारों संतानों ने खूब तरक्की की। मीनू मसानी बैरिस्टर बने। केकी मनोरोगविज्ञानी बने, मेहर ने सरकारी नौकरी कर ली और वह ऑल इंडिया रेडियो के उपमहानिदेशक के पद से सेवा-निवृत्त हुई थीं। पेसी गणितज्ञ बने।

यह जीवनी मीनू मसानी के बारे में है और इन चारों संतानों में वह सबसे बड़े थे। इस पुस्तक में उनका उल्लेख हम मसानी के नाम से करेंगे।

मसानी की आरंभिक स्कूली शिक्षा बंबई के कैथीड्रल हाई स्कूल और न्यू हाई स्कूल (आजकल जिसे भरदा हाई स्कूल कहते हैं) में हुई थी। यहीं से 1921 में उन्होंने दसवीं कक्षा पास की। भरदा हाई स्कूल के कई विद्यार्थी आगे चलकर बहुत प्रसिद्ध हुए जिनमें से एक थे यूसुफ मेहरअली, जो मीनू के सहपाठी थे। स्कूल के दिनों में मसानी क्रिकेट और हॉकी खेला करते थे और बंबई में बसे इटली के काउंट ओदोन साविनी से उन्होंने वायलिन बजाने की शिक्षा भी ली थी। साविनी के एक और शिष्य थे मेहली मेहता जिनके लड़के जुबिन मेहता शास्त्रीय संगीत के विश्व प्रसिद्ध कंडक्टर हैं।

मसानी के पिता अपने सबसे बड़े लड़के को डाक्टर बनाना चाहते थे लेकिन यूसुफ मेहरअली की सलाह पर उन्होंने कानून की पढ़ाई को चुना। दसवीं की परीक्षा पास कर लेने के बाद मसानी ने बंबई के एल्फिनस्टोन कालेज में दाखिला ले लिया। बंबई की यह दूसरी ऐसी शिक्षा संस्था है, जहां अनेक प्रसिद्ध भारतीयों ने शिक्षा ग्रहण की थी और इनमें शामिल हैं भारत के 'ग्रैंड ओल्डमेन' दादाभाई नौरोजी, जो इस कालेज में प्रोफेसर थे। स्नातक की शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद मसानी 1925 में लंदन चले गए, जहां लंदन स्कूल ऑफ इकनॉमिक्स में उन्होंने कानून की पढ़ाई की और लंदन विश्वविद्यालय की एलएल.बी. की डिग्री प्राप्त की। *लिंकन्स इन* द्वारा वह बैरिस्टर-एट-लॉ घोषित किए गए।

लंदन में मसानी ने अपने विद्यार्थी जीवन में विद्यार्थी-राजनीति में

बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था। ब्रिटिश लेबर पार्टी की नीतियों से आकर्षित होकर वह पक्के समाजवादी बन गए थे। इंग्लैंड में विद्यार्थी यूनियनें पार्टी की नीतियों के अनुरूप संगठित की जाती हैं। वह लंदन स्कूल ऑफ इकनॉमिक्स, जिसे अक्सर एलएसई नाम से पुकारा जाता था, की विद्यार्थी यूनियन के सक्रिय सदस्य थे और लेबर पार्टी के सहयोग से शीघ्र ही यूनियन एग्ज़िक्यूटिव के लिए चुन लिए गए। एक दिलचस्प किस्सा यह है कि मसानी ने लेबर पार्टी के सदस्य के नाते यूनियन के अध्यक्ष पद के लिए चुनाव लड़ा, तो उनके विरोध में एक स्वतंत्र उम्मीदवार की तरह वी.के.कृष्णामेनन चुनाव में खड़े हुए थे जो मसानी से कुछ साल पहले एलएसई के विद्यार्थी रह चुके थे। परिणाम यह हुआ कि दोनों चुनाव हार गए और कन्ज़रवेटिव पार्टी समर्थित उम्मीदवार की चुनाव में जीत हुई।

मसानी जब बैरिस्टर बने, उससे पहले ही वह एक प्रतिबद्ध समाजवादी और सोवियत संघ के प्रशंसक बन चुके थे। 1917 की रूसी क्रांति के दस साल बाद, 1927 में, वह एक ऐसे ग्रुप में शामिल हो गए जिससे 'श्रमिकों की पितृभूमि' जाने का अवसर मिल सके। सोवियत संघ में तब लेनिन द्वारा लागू न्यू इकोनॉमिक पालिसी (एनईपी) का दौर था। एनईपी एक तरह की मिश्रित अर्थव्यवस्था थी, जो भारत की स्वतंत्रता के बाद हमारे यहां भी लगभग चालीस वर्ष तक अपनाई जाती रही थी। एनईपी में सीमित मात्रा में निजी उद्यम की भी छूट थी। राज्य द्वारा संचालित दूकानों के साथ-साथ निजी स्वामित्व वाली दूकानें भी थीं; प्राइवेट टैक्सियां भी चल रही थीं। मसानी ने जो वहां देखा और अनुभव किया, वह उससे बहुत अधिक प्रभावित हुए थे।

सन् 1927 एक ऐसा वर्ष था, जब लंदन में वह पहली बार जवाहरलाल नेहरू से मिले, जो अपने पिता मोतीलाल नेहरू के साथ वहां आए थे। मसानी ने जवाहरलाल नेहरू को सोवियत संघ का अपने से भी ज्यादा प्रशंसक पाया।

अपनी शिक्षा पूरी कर लेने के बाद 1928 में मसानी पक्के समाजवादी तथा मार्क्सवादी बनकर भारत लौट आए और बांबे हाई कोर्ट की अदालत में शामिल हो गए। सम्मानित पत्रकार तथा उत्कट राष्ट्रवादी एस.ए. बरेलवी द्वारा संपादित *बांबे क्रॉनिकल* में मसानी ने सोवियत संघ के अपने अनुभवों पर आधारित एक भावपूर्ण लेखमाला प्रकाशित करवाई थी।

2

स्वतंत्रता संघर्ष में भागीदारी

मसानी को बांबे हाई कोर्ट में प्रैक्टिस करने वाले एकमात्र अंग्रेज बैरिस्टर एफ. कोल्टमैन के चैंबर्स के अंतर्गत वकालत करने का मौका मिल गया। जैसाकि पहले बताया जा चुका है, मसानी तब लंदन से बैरिस्टर तथा समाजवादी बनकर भारत लौटे थे। जल्दी ही उनकी दिलचस्पी वकालत के बजाए स्वतंत्रता संघर्ष में ज्यादा दिखाई देने लगी। हालांकि उन्होंने तेरह वर्षों तक वकालत की लेकिन उन्होंने बहुत थोड़े मुकदमे लड़े। इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए क्योंकि इस अवधि में वह वकील कम और स्वतंत्रता सेनानी ज्यादा बने रहे।

अपने प्रिय मित्र और सहपाठी यूसुफ मेहरअली की प्रेरणा से मसानी कांग्रेस में शामिल हो गए और स्वतंत्रता संघर्ष में भागीदारी करने लगे। 1932 में गांधी जी ने जब नागरिक अवज्ञा आंदोलन दूसरी बार* शुरू किया तो उन्होंने कांग्रेसियों का कानून तोड़ने, गिरफ्तारी देने और ब्रितानी जेलों को भरने के लिए आह्वान किया। समय-समय पर कांग्रेस के कार्यकर्ताओं के जत्थे कानून तोड़ते और अपनी गिरफ्तारी देते, जिनमें यूसुफ मेहरअली शामिल थे। उन्होंने मसानी से भी आंदोलन में शामिल होने का आग्रह किया लेकिन

---

* गांधी जी ने यह आंदोलन तब स्थगित कर दिया था, जब ब्रिटिश शासकों ने भारत में स्व-शासन पर विचार करने के लिए गांधी जी तथा अन्य भारतीय नेताओं को गोलमेज कांफ्रेंस के लिए आमंत्रित किया था। कांफ्रेंस विफल रही। गांधी जी भारत लौटे और उन्होंने सविनय अवज्ञा आंदोलन दोबारा शुरू कर दिया।

गिरफ्तारी देने के लिए नहीं बल्कि गोपनीय तरीके से लगातार कार्यकर्ताओं को आंदोलन के लिए भेजते रहने के लिए, जो अपनी गिरफ्तारी देने के लिए भी तैयार हों।

पहली जेल-यात्रा

मेहरअली की गिरफ्तारी के बाद मसानी ने ऐसे कार्यकर्ताओं को जुटाना शुरू कर दिया, जो कानून तोड़ने, पुलिस की लाठियां खाने और जेल जाने के लिए तैयार थे। वह अक्सर टैक्सियों में सफर करते और कुछ घंटों बाद टैक्सी बदल लेते थे ताकि पुलिस की निगाह से बचे रहें। उन्होंने यह भी देखा कि टैक्सी ड्राइवर इस मामले में खूब सहयोग कर रहे थे। वे स्वतंत्रता-सेनानियों को अपनी टैक्सियों में निस्संकोच एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे और अपनी गिरफ्तारी से भी डरते नहीं थे। पर यह कुछ दिनों की ही बात थी कि उन्होंने खुद को पुलिस से बचाए रखा।

आखिरकार 2 मई, 1932 को उन्हें नागरिक अवज्ञा आंदोलन के कार्यकर्ता होने के संदेह में हिरासत में ले लिया गया। उन्हें दो महीने जेल में रखा गया और बाद में चेतावनी देकर छोड़ दिया गया। कानून के अनुसार, किसी भी कैदी को, बिना मुकदमे के दो महीने तक ही जेल में रखा जा सकता था।

दूसरी जेल-यात्रा

जनवरी 1933 में, मसानी को उनके अपने अनुरोध के फलस्वरूप, बंबई प्रांतीय कांग्रेस कमेटी का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। आजकल राजनेता अक्सर किसी स्वार्थवश पार्टी के पद पर आसीन होना चाहते हैं, जबकि नागरिक अवज्ञा आंदोलन के दौर में कांग्रेसजन गिरफ्तारी देने के लिए पार्टी के पद पर आसीन होना चाहते थे। 3 जनवरी, 1933 को मसानी ने अपना निर्णय सुना दिया कि वह बंबई के चौपाटी बीच पर एक सार्वजनिक सभा को संबोधित करेंगे। क्योंकि एक अध्यादेश के अनुसार सार्वजनिक सभाएं करने पर रोक थी, अतः मसानी कानून का उल्लंघन कर अपनी गिरफ्तारी देने वाले थे। जैसे ही वह अपना भाषण देने के लिए उठे, पुलिस हरकत

में आ गई और उन्हें गिरफ्तार कर ले गई। पहली रात उन्होंने हवालात में बिताई और अगले दिन उन्हें एक हिंदुस्तानी मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। अपना अपराध स्वीकार कर लेने पर उन्हें एक साल के कठोर कारावास की सजा दी गई। बंबई की आर्थर रोड जेल में पंद्रह दिन बिता लेने के बाद उन्हें नासिक की सेंट्रल जेल भेज दिया गया।

नासिक जेल एक सुखद और शिक्षाप्रद अनुभव साबित हुई। मसानी जिस तरह की बौद्धिक गतिविधियों से आनंदित होते थे, वे सभी उन्हें जेल में मिल गईं। कैदियों को शाम 6 बजे से सुबह 6 बजे तक एकांत कोठरी में बंद कर दिया जाता था। दिन के समय अन्य राजनीतिक कैदियों के साथ वह भी जेल के खुले प्रांगण में रहने-घूमने के लिए स्वतंत्र थे—जिन्हें उन्होंने "बंबई, गुजरात और महाराष्ट्र का संभ्रांत समाज" कहा है। इनमें शामिल थे—"विनोदशील" बी.जी.खेर, एन.वी.गाडगिल, चंदुलाल देसाई और भूलाभाई देसाई; और "खासे गंभीर दिखते" गांधीवादी, जैसेकि मोरारजी देसाई, शंकरराव देव, कुमारप्पा बंधु और के. मशरुवाला। मसानी को यह प्रांगण का जीवन बड़ा रोचक लगता क्योंकि यहां अध्ययन-मंडल, वाद-विवाद, खेल-कूद और कभी-कभार नृत्य प्रदर्शन जैसी गतिविधियां होती रहती थीं। अक्सर खान-पान के आयोजन भी होते रहते और "श्रीखंड बनाने के लिए कई दिनों तक चीनी व दूध जमा करना पड़ता था।" अपनी मां को लिखे एक पत्र में मसानी ने कहा है कि उन्होंने सौ के करीब पुस्तकें पढ़ ली हैं। उन्हें दिसंबर 1933 के शुरू में रिहा कर दिया गया था।

मसानी की एक साल बाद बंबई में वापसी हुई और उन्होंने अपनी वकालत जारी रखने का फैसला किया। मसानी के आश्चर्य का तब ठिकाना नहीं रहा, जब उन्हें पता चला कि एडवोकेट जनरल (महाधिवक्ता) सर जमशेदजी कांगा ने मसानी को वकालत करने से रोकने का प्रयास किया था। उनका तर्क था कि 3 जनवरी, 1933 को मसानी ने गैर-कानूनी तौर पर चौपाटी पर मीटिंग की और इंडियन बार काउंसिल एक्ट के अंतर्गत वह कदाचार के दोषी ठहराए गए थे। मसानी के अलावा दो पारसी सज्जन फिरोज़ एवं केकी और थे, जो नागरिक अवज्ञा आंदोलन में अपनी भूमिका के लिए गिरफ्तार कर जेल भेजे गए थे। उस मुकदमे की सुनवाई बांबे हाई

कोर्ट की एक पीठ द्वारा की गई थी और इसका संचालन मुख्य न्यायाधीश सर जॉन बूमान्ट ने किया था। कोर्ट का फैसला था कि महज़ गैर-कानूनी साझेदारी से मसानी ''कानूनी पेशे में काम करने'' के अयोग्य नहीं घोषित किए जा सकते। सर जमशेदजी कांगा यह मुकदमा जरूर हार गए थे लेकिन उन्होंने अपना प्रयास नहीं छोड़ा। मसानी के अनुसार ''पुराने जमाने के पारसी होने और पुराने वक्तों को मानने वाले होने के कारण'' सर जमशेदजी कांगा ने लंदन की प्रीवी काउंसिल में अपील दाखिल कर दी। औपनिवेशिक भारत में प्रीवी काउंसिल हमारे आजकल के सुप्रीम कोर्ट के बराबर थी। इसे अक्सर ''द किंग इन काउंसिल'' की संज्ञा से पुकारा जाता था।

बार एसोसिएशन के तत्कालीन सचिव एम.सी. छागला ने (जो स्वाधीनता के बाद भारत के उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश बने और फिर केंद्रीय विधि मंत्री) ने मोहम्मद अली जिन्ना (वे उन दिनों इंग्लैंड में थे) को लिखा कि वह उनके भतीजों मसानी तथा भरूचा का केस लड़ें, जो खुद भी वकील हैं। जिन्ना ने यह कहते हुए मना कर दिया कि सिद्धांततः वह बिना फीस लिए कोई केस नहीं लड़ते। भाग्यवश गांधी जी के मित्र एच.एस.एल.पोलक ने सॉलिसिटर के रूप में अपनी स्वीकृति दे दी और डी.एन.प्रिट तथा के.सी.वालच बिना फीस लिए मसानी और भरूचा के लिए पेश होने के लिए राजी हो गए। प्रिवी काउंसिल के लार्ड ब्लेनसबोर्ग ने फैसला सुनाते हुए अपील यह कहते हुए खारिज कर दी, ''परिस्थितियां ऐसी नहीं थीं कि हिज़ मैजिस्टी को यह सलाह दी जाए कि वे इनके आधार पर बांबे एडवोकेट जनरल को अपील के लिए विशेष अनुमति देने के लिए कहें।'' उल्लसित होकर मसानी ने कहा, ''ब्रिटिश न्याय जिंदाबाद!''

तीसरी जेल-यात्रा

दूसरी बार की कैद के दस साल बाद मसानी ने फरवरी 1943 में तीसरी और अंतिम बार गिरफ्तारी दी। यह घटना इस तरह हुई। छह महीने पहले, 8 अगस्त, 1942 को, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा बंबई के गोवालिया टैंक मैदान में आयोजित जनसभा में गांधी जी ने 'भारत छोड़ो' का ऐतिहासिक प्रस्ताव रखा था और अंग्रेजों से भारत छोड़ देने की मांग की थी। इस प्रस्ताव के पारित

होने के अगले दिन अनेक कांग्रेसी नेताओं को गिरफ्तार कर जेलों में ठूंस दिया गया। इनमें से अधिकांश को महाराष्ट्र के अहमदनगर फोर्ट में बंद किया गया था, जबकि गांधी जी को पुणे में आगा खां के बंगले में नजरबंद किया गया था। 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के पारित होने के समय मसानी को राजनीति छोड़े कुछ साल हो चुके थे और वह टाटा कंपनी में एक एग्ज़िक्यूटिव (व्यवस्थापक) की हैसियत से काम कर रहे थे। वह इस बात से बहुत बेचैनी महसूस कर रहे थे कि उनके निकटस्थ लोगों—जेपी, राममनोहर लोहिया और अच्युत पटवर्धन के गिरफ्तार कर लिए जाने का पूरा अंदेशा है। उन्होंने भूमिगत गतिविधियों में सक्रिय रूप से हिस्सेदारी निभाने का फैसला किया और खुद को उन लोगों के निर्देशन में दे दिया, जो कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के सभी सदस्यों की गिरफ्तारी के बाद भारत छोड़ो अभियान का संचालन कर रहे थे। इन भूमिगत गतिविधियों के तौर पर उनका एक काम था *नाइन्थ ऑगस्ट* नामक भूमिगत पत्रिका का प्रकाशन करना। यह अच्युत पटवर्धन द्वारा संपादित साइक्लोस्टाइल्ड पाक्षिक पत्रिका थी। मसानी लगभग छह महीनों तक गिरफ्तारी से बचे रहे और *नाइन्थ ऑगस्ट* में 'सेंसर्ड न्यूज़ एंड अनसेंसर्ड व्यूज़' शीर्षक से अपना स्तंभ लिखते रहे।

9 फरवरी, 1943 को गांधी जी का 21 दिन का उपवास शुरू हुआ ताकि भारत छोड़ो आंदोलन के फलस्वरूप होने वाली हिंसा के लिए प्रायश्चित किया जा सके और साथ ही ब्रिटिश सरकार की दमनकारी और निरोधक गतिविधियों के प्रति विरोध भी जताया जा सके। गांधी जी के उपवास से उनके करोड़ों अनुयायिओं में दुख की लहर दौड़ गई क्योंकि उन्हें आशंका थी कि गांधी जी के लिए यह उपवास कहीं घातक न हो जाए और ऐसा मानने वालों में मसानी भी शामिल थे। आखिर उन्होंने खुले में आने का फैसला किया। वह जे.आर.डी.टाटा से मिले और सारी स्थिति का खुलासा करने के बाद अपना इस्तीफा देने की पेशकश की और साथ ही अपनी यह इच्छा भी प्रकट की कि वह पुणे में सत्याग्रह कर गांधी जी को मरने से बचाएंगे। जे.आर.डी.टाटा ने उनके इस्तीफे की पेशकश मान ली और साथ ही यह भी कहा कि जेल से छूटने के बाद वह जब चाहें अपनी नौकरी पर लौट सकते हैं।

मसानी ट्रेन से पुणे पहुंचे और वहां अपने एक मित्र के घर में शरण ली। पच्चीस आदमियों और पच्चीस औरतों वाले स्वयंसेवकों के एक जत्थे का नेतृत्व करते हुए, जिनके हाथों में राष्ट्रीय झंडे थे, मसानी आगा खां के बंगले की तरफ एक जुलूस की शक्ल में आगे बढ़ने लगे। वे अभी सौ कदम ही आगे बढ़े होंगे कि पुलिस ने इन प्रदर्शनकारियों को गिरफ्तार कर लिया। अगले दो महीने मसानी ने पुणे की यरवदा जेल में बिताए।

अप्रैल 1943 में, उनकी रिहाई के समय, कांग्रेस के कार्यकर्ता और बंबई के मेयर डॉ. डी.डी.गिल्डर ने अपनी गिरफ्तारी दी। इस तरह मेयर का पद रिक्त होने पर कांग्रेस पार्टी ने मसानी को उप-चुनाव लड़ने का आदेश दिया। इसके लिए मसानी रोजगार देने वाले अपने मालिकों के पास गए और उन्होंने न केवल मेयर का चुनाव लड़ा बल्कि वह जीत भी गए। वह 38 साल की आयु में मेयर चुने जाने वाले युवतम व्यक्ति थे और आने वाले चालीस वर्षों तक यह रिकार्ड कायम रहा।

इस अवधि में मसानी के लिए सबसे महत्वपूर्ण घटना कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी थी, जो उनके नासिक जेल में दूसरी बार बंदी रहने के समय गठित हुई थी।

3

समाजवादी के रूप में बिताए वर्ष

1933 में, नासिक जेल की दूसरी कैद के दौरान, मसानी को जयप्रकाश नारायण (जो अपने लोकप्रिय नाम जेपी से ज्यादा जाने जाते थे) का संसर्ग प्राप्त हुआ। वे मसानी के जेल में आने के कई महीने पहले से वहां कैद थे। ये दोनों पहले भी मिल चुके थे, अतः उनमें परस्पर परिचय न होने की अजनबियत नहीं थी। हालांकि ये दोनों समाजवादी थे, पर उनमें भिन्नता भी थी। मसानी का समाजवाद ब्रिटिश लेबर पार्टी का-सा समाजवाद था, जिसमें जनतंत्र के प्रति पूर्ण निष्ठा समाहित थी यद्यपि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है, उनमें "रूस की अक्तूबर क्रांति के प्रति गहरा उत्साह भी था।" इसके विपरीत जेपी का समाजवाद कहीं अधिक साम्यवादी था क्योंकि यह अमेरिकन कम्युनिस्ट पार्टी से प्रभावित था और इसे उन्होंने अमेरिका में अपने विद्यार्थी जीवन में अपनाया था। इन दोनों को ही अपने साम्यवादी विषाणु से मुक्ति पानी थी; जेपी की तुलना में मसानी ने इससे पहले मुक्ति पाई थी। पर वे दोनों इतने दृढ़ राष्ट्रवादी थे कि उन्होंने समान लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए अपने मतभेदों को भुला दिया और यह लक्ष्य था—स्वतंत्र समाजवादी भारत। नासिक जेल में बंद तब कुछ अन्य समाजवादी थे—राममनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन और यूसुफ मेहरअली।

इन स पी का सपना था समाजवादी भारत और इसको पूरा करने के लिए जरूर. था कि कांग्रेस को भी समाजवादी विचारधारा स्वीकार हो। वजह यह थी ।के कांग्रेस में कई तरह की विचारधाराओं वाले लोग थे

और हर कोई अपनी विचारधारा को मनवाना चाहता था। क्योंकि ऊपर उल्लिखित सभी लोग स्वतंत्रता आंदोलन में किसी भी तरह की अड़चन नहीं डालना चाहते थे और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को वे स्वतंत्रता संघर्ष संबंधी गतिविधियों का अगुआ मानते थे, अतः इन्होंने समाजवादी पार्टी के गठन का फैसला किया तथा इसका नामकरण कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी (सीएसपी) किया, जो एक स्वतंत्र पार्टी न होकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अंग होने वाली थी। नासिक जेल में एक साथ जमा अग्रणी समाजवादियों के निर्देशन में सीएसपी के कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार की जाने लगी।

दिसंबर 1933 में, जेल से रिहा होने के फौरन बाद, मसानी जवाहरलाल नेहरू से मिलने इलाहाबाद पहुंचे और नई पार्टी के लिए उनका सहयोग मांगा। अपना एक पत्र उन्होंने जवाहरलाल को व्यक्तिगत रूप से सौंपा जिसमें लिखा था :

प्रिय पंडित जवाहरलाल,

बंबई में कुछ कांग्रेसियों ने, जो समाजवादी विचारधारा के हैं, कांग्रेस सोशलिस्ट ग्रुप अथवा पार्टी के गठन का फैसला किया है।

हम महसूस करते हैं कि कांग्रेस तथा इस देश को आपने जिस कुशलता से समाजवाद तथा साम्राज्यवाद-विरोधी दिशा की ओर मोड़ा है, कांग्रेस में विद्यमान समाजवादी संगठन को भी इन्हीं मूल्यों को अपनाना चाहिए।

प्रस्तावित ग्रुप भी, जिसका गठन अभी किया जाना है, आपके द्वारा निर्धारित लक्ष्य को कांग्रेसजनों तथा प्रांत की जनता (अथवा, प्रेसीडेंसी) के सम्मुख रखेगा, जो समाजवादी कार्रवाई तथा उद्देश्यों से प्रेरित होगा।

ग्रुप आम और विशिष्ट कांग्रेसजनों के बीच समाजवादी विचार का प्रचार करेगा ताकि कांग्रेस आगे चलकर समाजवादी स्वरूप ले सके। हम लोग मजदूरों (और किसानों) के बीच इसका प्रचार करेंगे, साथ ही उनके रोज़मर्रा के आर्थिक संघर्ष में भी सहभागिता करेंगे।

हमें इस बात से बड़ी प्रसन्नता होगी, यदि इस ग्रुप के गठन में आपकी सहमति तथा सहयोग मिले।

आपका भ्रातृवत्,
एम.आर.मसानी

नेहरू ने मसानी को अपने आवास 'आनंद भवन' में ठहरने का आमंत्रण दिया और "कांग्रेस के भीतर समाजवादी ग्रुपों के गठन का स्वागत किया ताकि कांग्रेस एवं देश की विचारधारा इसके प्रभाव में रहते हुए काम कर सके।" मसानी भावविभोर थे। शुरू से ही नेहरू और उनमें एक अच्छी समझ बन गई थी। दोनों ही आधुनिकता और पश्चिमी रंग में रंगे हुए थे। उनकी अक्सर मुलाकातें होने लगीं और मसानी के मन में नेहरू के प्रति अत्यंत गहरा स्नेह व आदर का भाव बना रहता था हालांकि यह कभी विवेक-च्युत नहीं रहा। मसानी ने अपनी आत्मकथा में लिखा भी है : "मैं शीघ्र ही जवाहरलाल का 'प्रिय-भाजन युवक' बन गया था और कुछ इसी तरह का रिश्ता मेरा जेपी, राममनोहर लोहिया और अच्युत पटवर्धन के साथ भी था।"

समाजवादी कांग्रेस के आदर्शों के प्रति नेहरू के समर्थन की घोषणा के बाद मसानी तथा अन्य कामरेडों ने 24 फरवरी, 1934 को, बंबई में आयोजित अपनी एक बैठक में, बांबे प्रेसीडेंसी कांग्रेस सोशलिस्ट ग्रुप के गठन की घोषणा कर डाली। पुरुषोत्तम त्रिकमदास, जो एक एडवोकेट थे और स्वतंत्रता संघर्ष में जिन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और मसानी, ये दोनों सचिव निर्वाचित किए गए। आगे चलकर पुरुषोत्तम त्रिकमदास का स्थान यूसुफ मेहरअली ने ले लिया था। सीएसपी ने अपना पहला राष्ट्रीय अधिवेशन मई 1934 में पटना, बिहार में आयोजित करने का फैसला किया।

लगभग तभी स्वराज पार्टी (सीएसपी की तरह, कांग्रेस के अंदर की एक पार्टी) भी अस्तित्व में आई। अब कांग्रेस के अंदर दो पार्टियां बन गई थीं; इन दोनों का लक्ष्य भी स्वतंत्रता आंदोलन को समर्थन देना था लेकिन इसके लिए दोनों का तरीका अलग तरह का था और इनकी आर्थिक नीतियां भी भिन्न थीं। स्वराज पार्टी (वस्तुतः यह 1920 में विद्यमान इसी नाम की

एक पार्टी का पुनरुद्धार था), मसानी के अनुसार, ''कांग्रेसजनों में संवैधानिक और संसदीय-प्रणाली को मानने वालों'' की पार्टी थी और इसका उद्देश्य कांग्रेस पार्टी को नागरिक अवज्ञा जैसे कार्यक्रमों को त्याग देने के लिए प्रेरित करना था क्योंकि यह कानून भंग करने एवं गिरफ्तारियां देने का कार्यक्रम था। इसके स्थान पर स्वराजी, ''अपनी दीर्घ व उत्तम सार्वजनिक सेवा'' के कारण, संवैधानिक संघर्ष को प्रमुखता देते थे और ब्रितानी कानून के अंतर्गत स्वतंत्रता के पथ पर आगे बढ़ने के हिमायती थे और इसके लिए विधान मंडल में शामिल रहकर होने वाले अनुभव को बहुत महत्व देते थे। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के समाजवादी, इसके विपरीत, अपनी मार्क्सवादी पृष्ठभूमि के कारण ''किसानों तथा श्रमिकों को साम्राज्यवादी तथा उससे जुड़ी अन्य स्वार्थी ताकतों के खिलाफ एकजुट होकर संघर्ष के लिए संगठित करना'' चाहते थे। स्वराजियों ने अपना राष्ट्रीय अधिवेशन रांची, बिहार में मई 1934 में करने का फैसला कर लिया था।

फलतः भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अंदर दो घटनाएं एक साथ घट रही थीं, वे भी भारत को प्राप्त होने वाली स्वतंत्रता के मात्र चौदह वर्ष पहले। स्वतंत्रता मिलने के बाद यदि गांधी की यह सलाह मान ली जाती कि कांग्रेस को भंग कर दिया जाना चाहिए, तो भारत में दो पार्टियों के प्रचलन को हम आज साक्षात देख रहे होते और ये दोनों पार्टियां न केवल जनतांत्रिक मूल्यों का समर्थन कर रही होतीं बल्कि इनमें से एक का स्वरूप मौटे तौर पर समाजवादी (सोशलिस्ट) और दूसरी का उदार-रूढ़िवादी (लिबरल-कंज़र्वेटिव) होता।

समाजवादी मसानी स्वराजियों द्वारा आयोजित अधिवेशन में भाग लेने के लिए निमंत्रित किए गए थे। जब डॉ. बी.सी.राय ने अपनी पार्टी के कार्यक्रम के बारे में एक प्रस्ताव रखा, तब मसानी ने एक संशोधन प्रस्तुत किया कि स्वराज पार्टी ''किसानों तथा श्रमिकों को साम्राज्यवाद तथा उनके समर्थक भारतीय स्वार्थी तत्वों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए संगठित करे।'' उदारतावादियों तथा रूढ़िवादियों के इस अधिवेशन में हालांकि मसानी का संशोधन स्वीकार तो नहीं किया गया था, इसके बावजूद उन्हें चालीस के मुकाबले छब्बीस मत मिले थे।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन की पूर्व-संध्या यानी 21 तथा 22 अक्तूबर, 1934 को, देश के विभिन्न हिस्सों में काम करने वाली लगभग एक दर्जन समाजवादी पार्टियों और ग्रुपों के प्रतिनिधि बंबई में आयोजित दूसरे अखिल भारतीय कांग्रेस समाजवादी सम्मेलन में सम्मिलित हुए थे। ये सभी ग्रुप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की छत्रछाया में काम करते थे। कांफ्रेंस का एजेंडा इन प्रांतीय पार्टियों तथा ग्रुपों को एक अखिल भारतीय राजनीतिक पार्टी के रूप में गठित करना था ताकि कांग्रेस पार्टी पर समाजवादी राह अपनाने का दबाव बनाया जा सके—गांधी जी से दूर हट कर समाजवाद को अपनाना।

इस प्रयास में मसानी की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। अधिवेशन की पूर्व-संध्या को लिखे अपने एक लेख में देश की राजनीतिक स्थिति को समाजवादी दृष्टि से परखते हुए मसानी ने कांग्रेस के तीन प्रमुख हिस्सों का विश्लेषण निम्न प्रकार किया था :

कांग्रेस का पहला हिस्सा, जो बहुसंख्यकों का हिस्सा था, ऐसे सक्रिय कांग्रेसजनों का समूह था जो महात्मा गांधी का समर्थक था और कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रमों को पूरा करने में संलग्न था, जैसेकि खद्दर, छुआछूत मिटाने का अभियान तथा नशाबंदी।

इसका दूसरा हिस्सा कांग्रेस के नेतृत्व से संबंध रखता था जैसेकि कांग्रेस संसदीय बोर्ड, जिसमें "उच्चकोटि के बौद्धिक तथा प्रभावशाली" लोग शामिल थे जिन्होंने अपने लिए संवैधानिक पद्धति को चुना था परंतु यह चुनाव उन्होंने "विवेकपूर्ण विश्वास के बजाय अपनी नैतिक हार के कारण" किया था। इसका सीधा संकेत स्वराजियों की तरफ था।

कांग्रेस का तीसरा हिस्सा समाजवादियों का था, जो अखिल भारतीय स्तर की एक राजनीतिक पार्टी बनाने में जुटे थे और इस हिस्से में ज्यादातर युवा लोग थे। पंडित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व से वंचित रहने के बावजूद, तब नेहरू जेल में थे, "कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी", जैसाकि मसानी ने लिखा है, "कांग्रेस के भीतर एक प्रभावशाली अल्पांश बन चुका था और जल्द ही उसने महात्मा गांधी की अविवादित सर्वोच्चता को चुनौती दे डाली थी।"

इतनी दमदार समाजवादी पार्टी का कांग्रेस के भीतर अस्तित्व होना और इसके बावजूद एक स्वतंत्र पार्टी के रूप में उसको स्थापित न करने के पीछे कारण यह था कि भारत को स्वतंत्रता मिलने के बाद, किसी राष्ट्रवादी आंदोलन का अंग बने रहकर ही, समाजवादी राज्य की स्थापना की जा सकती थी। इसके अलावा एक व्यावहारिक व्यक्ति होने के नाते मसानी इस बात के प्रति सजग थे कि 'इन तीन शक्तियों—गांधीवाद, संविधानवाद और समाजवाद' का इस विषय पर विवाद होने पर गांधी और संसदीय बोर्ड एक होकर समाजवादियों पर नियंत्रण बनाए रखेंगे।

किंतु कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में वामपंथी धारा के लोग भी थे (विशेषतया साम्यवादी जो इस ग्रुप में घुसपैठ कर पहुंचे थे) और उनका कहना था, "समाजवाद और कांग्रेस दो परस्पर-विरोधी पदनाम हैं।" जयप्रकाश नारायण ने उनकी इस मांग को ठुकरा दिया था। उनका मानना था : "कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी किसी एक वर्ग की पार्टी नहीं है। यह केवल मेहनतकश लोगों की पार्टी भी नहीं है। यह तो एक ऐसी राजनीतिक पार्टी है जिससे सभी तरह के साम्राज्यवाद-विरोधी तत्व जुड़े हैं और इस पार्टी का काम है कि वह इन सभी तत्वों को, ब्रिटिश साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकने में, मदद दे और भारत में सही मायनों में जनता के लिए *स्वराज* स्थापित करने में सहायक हो सके।"

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के एक अधिवेशन में सोशलिस्ट पार्टी का संविधान पारित हुआ और इस प्रकार अक्तूबर 1934 में पार्टी के भीतर एक पार्टी की स्थापना हो गई। इसकी आर्थिक नीति के प्रमुख तत्व थे : "मेहनतकश लोगों को पूर्ण अधिकार, आर्थिक योजना, प्रमुख उद्योगों का राष्ट्रीयकरण, विदेश व्यापार पर सरकार का नियंत्रण, सामंतवाद तथा जमींदारी की बिना कोई हर्जाना दिए समाप्ति, भूमि का पुनर्वितरण और सहकारी तथा सामूहिक खेती।"

जयप्रकाश नारायण को महासचिव और मसानी को पार्टी का संयुक्त सचिव चुना गया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अंग होने के कारण कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के एक प्रतिनिधि को कांग्रेस कार्यकारी समिति में शामिल

कर लिया गया। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने अपने प्रतिनिधि के रूप में अच्युत पटवर्धन को नामांकित किया।

अगले छह वर्षों तक यानी 1939 के लगभग अंत तक मसानी ने देश का दूर-दूर तक दौरा किया और स्वतंत्र भारत की भावी विचारधारा के रूप में समाजवादी विचारधारा का अनथक प्रचार किया। साथ ही उन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के विभिन्न तरह के कार्यक्रमों—जिला स्तर पर आयोजित ट्रेड यूनियन मीटिंगों से लेकर राज्य स्तर पर आयोजित सम्मेलनों तक में—भाग लिया।

उन्होंने ट्रेड यूनियन आंदोलन में गहरी दिलचस्पी दिखाई। 1934 में तीन श्रमिक संघ कार्यरत थे—द नेशनल ट्रेड यूनियन फेडरेशन (राष्ट्रीय श्रमिक संघ फेडरेशन) जिसका नेतृत्व मध्यमार्गी नेता एन.एम.जोशी कर रहे थे जिन्होंने भारत में ट्रेड यूनियन आंदोलन की शुरुआत की थी और वह किसी राजनीतिक पार्टी अथवा ग्रुप से भी जुड़े नहीं थे; ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस (अखिल भारतीय श्रमिक संघ कांग्रेस) जिसके अधिकांश नेता कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी से संबद्ध थे; और रैड ट्रेड यूनियन कांग्रेस, जो भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीआई) की ट्रेड यूनियन थी।

श्रमिक वर्ग की एकता में विश्वास रखने के कारण कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने ट्रेड यूनियन आंदोलन को एकजुट रखने का संकल्प लिया हुआ था हालांकि सीपीआई कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को "सामाजिक फासीवादी" मानती थी। सीपीआई का यह रवैया कमिन्टर्न की छठी कांग्रेस के रुख पर, जो मास्को में स्थित अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट संगठन था, आधारित था और यह संगठन पूरे विश्व की कम्युनिस्ट पार्टियों की गतिविधियों पर नियंत्रण रखता था और आवश्यक दिशा-निर्देश देता था। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ट्रेड यूनियन आंदोलन की भीतरी एकता बनाए रखने में सफल रही थी। इसी प्रक्रिया में कम्युनिस्टों ने ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था।

ऑल इंडिया कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के 1938 के लाहौर में आयोजित चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन में, अध्यक्ष के नाते, मसानी ने अपने भाषण में अनेक विषयों पर व्यापक चर्चा की थी जिनमें अंतर्राष्ट्रीय स्थिति से लेकर

स्वतंत्रता संघर्ष का मूल्यांकन, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के स्वरूप एवं कांग्रेस पार्टी के अंदर उसकी भूमिका आदि विषय शामिल थे।

> हम, क्रांतिकारी समाजवादी, वे चाहे भारत के हों अथवा विदेश के, मूलतः किन मूल सिद्धांतों का प्रतिनिधित्व करते हैं? समाजवाद के अंतर्गत जो भी नीतियां और सिद्धांत मान्य हैं, उनमें से दो का मैं समाजवाद के सार के रूप में चुनाव करना चाहूंगा—निजी संपत्ति का उन्मूलन और वर्गहीन समाज का विकास। मैं यहां बताना चाहूंगा कि हमारे मत की दो अंतर्निहित अवधारणाएं हैं, समानता और स्वतंत्रता। यदि समाजवाद उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व, वितरण तथा विनिमय के उन्मूलन पर और वर्गहीन समाज के निर्माण पर जोर नहीं देता तो ऐसा समाजवाद व्यर्थ है।

इसके साथ-साथ ये विचार समाजवाद से उनके भावी परित्याग के संकेतक भी माने जा सकते हैं क्योंकि वह किसी भी तरह की विचारधारात्मक कट्टरता के आगे झुकने को तैयार नहीं हुए।

बौद्धिक तथा शारीरिक दोनों स्तरों पर, लोकतांत्रिक समाजबाद के विचार के प्रचार-प्रसार और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को कांग्रेस के भीतर एक पहचान दिलाने के लिए, इतना अधिक श्रम करने के बाद भी मसानी ने पहले अपना पद और फिर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की प्राथमिक सदस्यता से आखिर क्यों नाता तोड़ लिया था? अगले अध्याय में इन बातों का खुलासा किया गया है।

4

साम्यवाद के विरुद्ध अभियान

मसानी ने 1927 में जब सोवियत संघ की यात्रा की थी, तब वह लंदन स्कूल ऑफ इकनॉमिक्स के विद्यार्थी थे। आठ साल बाद, 1935 में, उन्हें दूसरी बार इस देश में जाने का अवसर मिला। तभी सोशलिस्ट लीग और ब्रिटिश लेबर पार्टी के वामपंथी नेता स्टैफर्ड क्रिप्स ने मसानी को लंदन आने का न्यौता दिया था और उनसे ब्रिटेन के समाजवादियों से वार्ता करने एवं लंदन में आयोजित एक कांफ्रेंस में, भारत में हुए विकास के बारे में, भाषण देने का आग्रह भी किया था ताकि "युद्ध के खिलाफ व्यापक जन प्रतिरोध की तैयारी की जा सके।"

जयप्रकाश नारायण ने, जिनके साथ मसानी की आजीवन दोस्ती रही, मसानी को इस निमंत्रण को स्वीकार करने की सलाह दी। उन्होंने मसानी को मास्को जाने का सुझाव भी दिया ताकि वह कम्युनिस्ट इंटरनेशनल अथवा कमिन्टर्न को, जो मास्को में स्थापित थी और जिस पर कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ सोवियत यूनियन (सीपीएसयू) का पूर्ण नियंत्रण था, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के बारे में जानकारी दे सकें। सचाई तो यह है कि जेपी चाहते थे कि मसानी मास्को पर यह दबाव डालें कि वह भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को त्याग दे और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को अपना ले क्योंकि "भारतीय परिस्थितियों को देखते हुए यही पार्टी मार्क्सवाद को उपयुक्त तरीके से अपना रही थी।" आज हमें यह सुझाव अजीब बल्कि अनुभवहीनता का द्योतक भी लग सकता है, पर जेपी का स्वभाव ऐसा ही था कि वह लोगों पर पूर्ण

विश्वास तो करते ही थे, उनकी अच्छाई तथा ईमानदारी में भी उनकी आस्था बनी रहती थी। इससे यह भी साबित होता है कि किस तरह उन और मीनू मसानी जैसे ज्यादातर 'वामपंथी' सोवियत संघ की सदाशयता में विश्वास करते थे।

मसानी लंदन पहुंचे, वहां कांफ्रेंस में बोले, ब्रिटिश समाजवादियों के साथ कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की एकजुटता का आश्वासन दिया और कहा कि हम लोग भी युद्ध के विरोध में आपके साथ हैं। इसके बाद अगस्त 1935 में वह जहाज से यात्रा कर सोवियत संघ पहुंचे। वह अपनी दूसरी यात्रा पूरी कर, सोवियत संघ के प्रति, अक्षुण्ण प्रशंसा से सराबोर हो वापिस लौटे।

भारत लौटकर उन्होंने अपने अनुभव 90 पृष्ठों की एक पुस्तिका *सोवियत साइडलाइट्स* में प्रस्तुत किए, जिसका प्राक्कथन स्वयं जवाहरलाल नेहरू ने लिखा था। *सोवियत साइडलाइट्स* पुस्तिका में सोवियत संघ की बिना किसी संकोच के घनघोर स्तुति की गई थी। जो बातें उनके मनोनुकूल थीं, उनकी खुलकर प्रशंसा की गई थी और जो ऐसी नहीं थीं, उनका बिना टीका-टिप्पणी के उल्लेख कर दिया गया था। *सोवियत साइडलाइट्स* के समापन अध्याय में, मसानी ने बोल्शेविक क्रांति के अठारह साल बाद के सोवियत संघ का तुलन-पत्र पेश करने की निम्न कोशिश की है :

> विश्व के संपूर्ण भूमंडल के छठे भाग में पिछले 18 वर्षों में जो कुछ घटित हुआ है, वह केवल प्रयोग नहीं है। यहां ऐसी तेज गति तथा पैमाने पर उपलब्धियां हासिल हुई हैं, जो मानव जाति के इतिहास में अब तक नहीं हुईं। इसका यह अर्थ नहीं है कि समाजवाद पूरी तरह से आ गया है अथवा सोवियत संघ इस धरती का स्वर्ग बन गया है। एक बात तो तय है कि पूंजीवादी संसार में एक परिपूर्ण समाजवादी समाज नहीं बनाया जा सकता, जैसेकि रेगिस्तान में एक नखलिस्तान होता है, अलबत्ता महामारी तथा बीमारी से घिरे होने पर भी पूर्ण स्वास्थ्य तथा सुरक्षा जरूर प्राप्त की जा सकती है। इसके बावजूद भौतिक स्रोतों तथा उपस्करों की कमी बनी रहेगी और मानव स्वभाव भी तो इतनी शीघ्रता से नहीं बदलता।

ऐसे लोग भी हैं जो यह मानते हैं कि सोवियत संघ ने अपने लक्ष्य को त्याग दिया है और उसने राज्य-पूंजीवाद को अपना लिया है। वह अपने तर्क की पुष्टि के लिए सोवियत संघ में विद्यमान असमानता का हवाला देते हैं। निस्संदेह असमानता वहां है। यह प्रचुर मात्रा में है और जो भी समाजवादी इसे देखता है, वह परेशान हो उठता है—एक तरफ कमिसार तथा उसकी पत्नी का वैभवपूर्ण जीवन-स्तर है तो दूसरी तरफ उनसे कुछ ही दूरी पर रहने वालों की घनघोर गरीबी। यहां फैक्टरी में काम करने वाले श्रमिक की औसत आय 150 से 200 रूबल प्रतिमाह है लेकिन ऐसे सोवियत नागरिक भी हैं—ट्रस्टों के प्रबंधक, लेखक और अभिनेत्रियां—जिनकी प्रति माह आय 5000 रूबल से भी ज्यादा है। ट्रेनों का 'साफ्ट' और 'हार्ड' दर्जा, थिएटर की टिकटों की आधा दर्जन से अधिक दरें और रेड आर्मी को प्रदान की जाने वाली पदवियां समतावादी सत्ता के खिलाफ जाती दिखाई देती हैं। काउंसिल ऑफ पीपुल्स कमिसार्स के अध्यक्ष, कामरेड मोलोतोव द्वारा, समता को हल्केपन से बुर्जुआ अवधारणा कहकर, इसकी उपेक्षा करना समाजवादी विवेक को शांत नहीं कर पाती। समाजवाद मोटे तौर पर समता का ही द्योतक है।

उन अनेक लोगों की तरह, जिन्होंने आगे चलकर 'मत त्यागने' का फैसला लिया, मसानी सोवियत संघ से आने वाली खबरों को लेकर अपनी आंखें व कान बंद रखकर बैठे नहीं रह सके कि स्टालिन किस नृशंसता से, सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी में अपने विरोधियों को निष्कासित करने में तथा खेतों के जबरन सामूहिकीकरण की नीति के खिलाफ लाखों किसानों का खात्मा करने में जुटे हैं।

सन् 1935 में मास्को में आयोजित अपनी एक मीटिंग में कम्युनिस्ट इंटरनेशनल ने भारत की दूसरी पार्टियों तथा ग्रुपों के साथ संयुक्त मोर्चा बनाने की नीति की घोषणा की। इस फैसले में 'प्रतिक्रियावादी' तथा 'बुर्जुआ' पार्टियों से हाथ न मिलाने की उनकी नीति में बदलाव दिखाई देता है। अब तक, जहां तक भारत का सवाल है, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और गांधी जी को इनके द्वारा प्रतिक्रियावादी माना जाता था। इसी कारण कांग्रेस नेतृत्व

वाले स्वतंत्रता संघर्ष को कम्युनिस्ट अपना समर्थन नहीं दे रहे थे। उलटे उन्होंने 'लीग अगेन्स्ट गांधी' की शुरुआत तक कर डाली थी। उनकी यह गलती थी क्योंकि यह प्रयास केवल असफल ही नहीं हुआ बल्कि उनके लिए प्रतिकूल भी साबित हुआ और कम्युनिस्ट अलग-थलग पड़ गए। कमिन्टर्न को जब अहसास हुआ कि भारत में उनकी पार्टी कोई प्रगति नहीं कर रही है तो उन्होंने अपनी नीतियों में परिवर्तन किया और बुर्जुआ पार्टियों की तरफ दोस्ती का हाथ बढ़ाकर उनमें घुसपैठ करने का फैसला किया ताकि स्वतंत्रता आंदोलन का नियंत्रण उनके हाथ में आ जाए। इस नई नीति को संयुक्त मोर्चा नाम दिया गया।

इस परिवर्तन का विश्लेषण करते हुए मसानी ने अपनी टिप्पणी इस तरह की थी :

> इस उम्मीद में कि पूंजीवाद अब अपनी समाप्ति की ओर बढ़ रहा है, सन् 1928 में अपनाई गई कट्टरपंथी नीति बुरी तरह असफल साबित हुई और इससे कम्युनिस्ट आंदोलन हर जगह कमजोर पड़ गया। हर देश की कम्युनिस्ट पार्टी अलग-थलग पड़ गई। इससे कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता, यदि हिटलर का उत्थान न हुआ होता और खतरे की स्थिति में सोवियत संघ को मित्र-राष्ट्रों की तलाश की जरूरत महसूस न हुई होती। समाजवादी पितृभूमि की इस जरूरत से पूरी दुनिया की रणनीति में व्यापक बदलाव आ गया। इसी ने संयुक्त मोर्चा की नीति अपनाने के लिए प्रेरित किया। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने भी सोवियत संघ की विश्वव्यापक 'साम्राज्यवाद-विरोधी जनमोर्चा' की नीति को अपना लिया।

इस परिवर्तन के फलस्वरूप भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (भाकपा) का गांधी जी, कांग्रेस तथा स्वतंत्रता संघर्ष के प्रति भाषा तथा स्वर बदल गया। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के जेपी, राममनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता, मसानी और अन्य नेताओं ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के सहयोग का हार्दिक स्वागत किया। पर शीघ्र ही उन्हें पता चल गया कि भाकपा में यह परिवर्तन कांग्रेस को ही हथियाने की रणनीति थी और उन्हें

यह देखकर बहुत निराशा हुई। यह बात भी जल्दी ही खुल गई कि संयुक्त मोर्चा की रणनीति साम्राज्यवाद के विरुद्ध मिले-जुले संघर्ष के सहकारी प्रयासों के अनुकूल नहीं थी और इसका लक्ष्य राष्ट्रीय नेतृत्व को छिन्न-भिन्न कर कम्युनिस्ट पार्टी को मजबूत करना था। दूसरे शब्दों में, इसका लक्ष्य सोशलिस्ट पार्टी में घुसपैठकर राष्ट्रीय आंदोलन पर कब्जा कर लेना था।

समाजवादी नेताओं द्वारा, कम्युनिस्टों के हार्दिक स्वागत के वातावरण में, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में न तो घुसपैठ करना कोई मुश्किल काम था और न ही इसके माध्यम से राष्ट्रीय आंदोलन को हथिया लेना। जन्वरी 1936 को कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की एक बैठक में न केवल भाकपा को खुलकर सहयोग देने का निर्णय लिया गया था बल्कि साम्यवादियों में से यदि कोई निजी स्तर पर सीपीएस की सदस्यता लेना चाहे तो इसके लिए स्वीकृति देने का निर्णय भी लिया गया था। इस निर्णय के परिणामस्वरूप अनेक कम्युनिस्टों की, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के संगठनात्मक पदों पर, नियुक्ति कर दी गई थी।

कामरेड इ.एम.एस.नम्बूदरीपाद और सज्जाद जहीर राष्ट्रीय स्तर पर सीपीएस के संयुक्त सचिव नियुक्त किए गए; पी.सुंदरय्या को सीपीएस का आंध्र का दायित्व सौंप दिया गया; ए.के.गोपालन और पी.रामामूर्ति को सीएसपी का मद्रास का कार्यभार दिया गया। पंडित नेहरू द्वारा जब जेड.ए. अहमद और एम.अशरफ को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी (एआईसीसी) के महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया गया तो कम्युनिस्ट कांग्रेस तक में प्रवेश पा गए। वस्तुतः, मसानी के अनुसार, कांग्रेस सोशलिस्ट वोटों के बल पर ही ये लोग प्रांतीय और अखिल भारतीय कांग्रेस समितियों के सदस्य चुने गए थे। इससे कम्युनिस्टों को बड़ा लाभ हुआ क्योंकि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की सदस्यता के अलावा उन्हें इसकी आड़ भी मिल गई क्योंकि उन दिनों कम्युनिस्ट पार्टी को अवैध घोषित किया हुआ था।*

---

* यह आड़ उनके अपने संगठन को दृढ़ बनाने में बड़ी मूल्यवान साबित हुई। भारत के स्वतंत्र होने के बाद कामरेड इ.एम.एस.नम्बूदरीपाद, पी.सुंदरय्या, ए.के.गोपालन और पी.राममूर्ति भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के प्रमुख सदस्य बने और 'कामरेड' सज्जाद जहीर पाकिस्तान कम्युनिस्ट पार्टी के सचिव नियुक्त किए गए थे।

सीएसपी में उनके प्रवेश के तुरंत बाद से सीएसपी मुख्यालय में, भारत के सभी हिस्सों से कम्युनिस्टों के खिलाफ शिकायतें पहुंचने लगीं। इन रिपोर्टों में कम्युनिस्टों के इस दावे का भी उल्लेख था कि मजदूर संघ आंदोलन (ट्रेड यूनियन मूवमेंट) में वह किसी भी अन्य पार्टी को अपना मोर्चा नहीं खोलने देंगे। सीएसपी का उपरोक्त निर्णय कम्युनिस्टों के लिए तो वरदान साबित हुआ, पर खुद सीएसपी के लिए यह बड़ा घातक निर्णय था। कम्युनिस्टों ने अखिल भारतीय किसान सभा और ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस, जो दोनों कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के संगठन थे, को हथिया लिया था। कम्युनिस्टों ने तो 1938 में, लाहौर में आयोजित अधिवेशन में, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी पर ही कब्जा करने की कोशिश की थी। यूसुफ मेहरअली, गंगा शरण सिंह और फरीद अंसारी के सहयोग से मसानी ने इस प्रयास को विफल कर दिया था। मसानी ने ही सबसे पहले कम्युनिस्टों की मंशा को भांप लिया था और उन्हें सीएसपी से निष्कासित करवाने की कोशिश की थी। जब वे इस प्रयास में सफल नहीं हुए तो उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया और इसके कुछ समय बाद, जैसाकि आगे स्पष्ट होगा, उन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को ही त्याग दिया। उनके बाद राममनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन और अशोक मेहता ने भी अपने पदों से त्यागपत्र दे दिए थे, जब वह अपनी पार्टी पर कम्युनिस्टों को बाहर निकालने के अपने प्रयास में सफल नहीं रहे। अलबत्ता ये तीनों पार्टी में जरूर बने रहे।

सितंबर 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ गया। कांग्रेस ने इस शर्त पर ब्रिटिश सरकार को सहयोग देने का आश्वासन दिया कि युद्ध के बाद भारत को स्वतंत्रता दे दी जाएगी। ब्रिटिश सरकार ने इस पर ध्यान नहीं दिया और तब कांग्रेस ने विभिन्न कांग्रेसी मंत्रियों को त्यागपत्र देने के लिए कहा। सीएसपी ने इस निर्णय का स्वागत किया क्योंकि उसका मानना था कि प्रांतीय सरकारों में बने रहकर कांग्रेस को औपनिवेशिक शासकों का साथ नहीं देना चाहिए। गांधी जी की घोषित नीति के अनुसार, "सत्याग्रह के नए शब्दकोश में कोई शत्रु नहीं है", और ब्रिटिश शासन के विरोध के बावजूद उनका ब्रिटेन के प्रति सद्भाव बना हुआ है, कांग्रेस ने निष्क्रिय किस्म की तटस्थता अपनाने का फैसला किया। सीएसपी भी ब्रिटेन को

उसके युद्ध प्रयासों में सहयोग देने के पक्ष में नहीं थी। यह बात कम्युनिस्टों को पसंद नहीं आई, जो अब तक कांग्रेस में पूरी तरह घुसपैठ कर चुके थे, कि कांग्रेस तथा सीएसपी युद्ध-विरोधी सिद्धांत स्वीकार करें। ऐसा इसलिए था कि तब स्तालिन ने हिटलर के साथ एक समझौता किया हुआ था। क्योंकि सोवियत संघ हिटलर का मित्र था, अतः हिटलर के खिलाफ कोई भी युद्ध कम्युनिस्टों की निगाह में 'साम्राज्यवादी युद्ध' हुआ; अतः ब्रिटेन के युद्ध-प्रयासों में किसी को भी सहयोग नहीं देना चाहिए।

मसानी का, सोवियत संघ द्वारा प्रचलित समाजवाद से, पहले ही मोह टूट चुका था और कम्युनिस्टों द्वारा सीएसपी को हथियाने का प्रयास तो उनके लिए 'आखिरी तिनका' साबित हुआ, अतः मसानी ने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की प्राथमिक सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। ''कार्यकारी समिति के दबाव में आकर जेपी का झुक जाना मेरे लिए आखिरी तिनका साबित हुआ। उनकी एक और हिचकिचाहट ने मुझे बहुत ज्यादा निराश किया। मुझे लगा कि अपनी ही पार्टी में नेतृत्व करने की मेरे लिए कोई गुंजाइश नहीं रही है और यह पार्टी बुनियादी बातों की तरफ ध्यान नहीं दे रही है।'' 11 नवंबर, 1939 को मसानी ने पार्टी से ही त्यागपत्र दे दिया हालांकि 1933 में नासिक जेल में इस पार्टी के निर्माण की परिकल्पना में उन्होंने मदद की थी।*

मसानी द्वारा मार्क्सवाद को त्यागने और फिर साम्यवाद के विरुद्ध अभियान शुरू करने की पृष्ठभूमि में उपरोक्त अनुभव रहे हैं। 'वाई आई अपोज़ कम्युनिज़्म' (मैं साम्यवाद का विरोध क्यों करता हूं) निबंध में, जो 1956 में प्रकाशित हुआ था, उन्होंने अपने विचार इस प्रकार लिखे हैं :

> सोवियत संघ में साम्यवाद ने अक्तूबर क्रांति की हर उदार तथा प्रगतिशील भावना से मुंह फेर लिया है और 'मुक्त एवं समतामूलक समाज' की धारणा, जिसका लेनिन ने उल्लेख किया था, के स्थान पर वहां एक नए किस्म की जाति-प्रथा देखने में आ रही है। वहां अब हम ऐसी असमानता एवं औद्योगिक सामंतवाद को बढ़ते हुए देख सकते हैं,

* मीनू मसानी, *क्लिस वाज़ इट इन दैट डान...* पृष्ठ 156. चालीस वर्ष बाद समान कारणों से उन्होंने स्वतंत्र पार्टी से भी त्यागपत्र दिया था हालांकि तब 'मूलभूत बातें' पहले की तुलना में अलग तरह की थीं।

जो वस्तुतः दास श्रम पर आधारित है।

जब मैं मुड़कर देखता हूं तो पाता हूं कि साम्यवाद से मेरा विरोध 1936 के विराट शुद्धीकरण और इसके तुरंत बाद के वर्षों से ही शुरू हो गया था। 1938 आते-आते मैं अपने लेखों में लिखने लगा था कि सोवियत साम्यवाद की पद्धति से जितनी जल्दी समाजवादी आदर्श अलग कर लिए जाएंगे, इनके सुरक्षित बने रहने की संभावना उतनी ही अधिक है।

लोकतंत्र और साम्यवाद के बीच मूलभूत मुद्दा नैतिकता को लेकर है जिसे हम में से कोई टाल नहीं सकता। इसमें बुनियादी अंतर 'मनुष्य' की वास्तविक प्रकृति को लेकर है। मैं लोकतंत्र का पक्षपाती हूं क्योंकि अपनी तमाम कमियों तथा दोषों के बावजूद यह चुनने की आजादी पर आधारित है। यह देर-सबेर गलत को सही कर लेने की सुविधा प्रदान करता है। प्रतिरोध की आवाज को हमेशा-हमेशा के लिए दबा नहीं दिया जाता।

मैं यह मानता हूं कि 'मनुष्य' सामाजिक प्रयोगों में काम आने वाली सामग्री भर नहीं है बल्कि अपने आप में एक साध्य है; और, प्रगति का आधार मानव मन की जिज्ञासा का निर्बाध बने रहना है। मैं साम्यवादी पद्धति का इसलिए विरोधी हूं क्योंकि इसमें उस बौद्धिक अभिवृत्ति के लिए कोई गुंजाइश नहीं है जिसका पाठ मैंने एच.जी.वैल्स से सीखा था : 'मुझे इस बात की परवाह नहीं है कि समय के किसी दौर में मैं पूरी मानवता के खिलाफ अल्पसंख्यक साबित हो जाता हूं क्योंकि मैं यदि सत्य को छू लेता हूं तो जीत उसी की होगी; और, यदि मैं ऐसा नहीं कर पाता, तब भी मैंने अपना श्रेष्ठ प्रयास तो किया ही है।'

सोवियत संघ से मोहभंग, कम्युनिस्टों के विश्वासघात और अपने समाजवादी मित्रों से मिली निराशा की क्षतिपूर्ति तब हुई, जब वह महात्मा गांधी तथा उनके दर्शन की ओर मुड़ गए।

5

गांधीवादी प्रभाव

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी (सीएसपी) के समाजवादी, महात्मा गांधी के प्रशंसक नहीं थे। इसके विपरीत ये लोग कार्ल मार्क्स, उसके अनुयायी लेनिन और रूस की बोल्शेविक क्रांति के प्रशंसक थे। सीएसपी के संस्थापक-नेता इस कदर निष्कपट और भोले थे कि 1937 में, जब मसानी सोवियत संघ की यात्रा पर गए थे, तो जयप्रकाश नारायण ने उनसे यह अनुरोध तक कर डाला था कि वह सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं को समझाने की कोशिश करें कि भारत में समाजवाद के प्रचार-प्रसार में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी की अपेक्षा सीएसपी कहीं बेहतर विकल्प साबित हो सकती है।

मसानी सहित सीएसपी के समस्त नेतृत्व का यह सोचना था कि सत्याग्रह तथा अहिंसा से स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की जा सकती। हालांकि सीएसपी का नेतृत्व गांधी जी का एक व्यक्ति और स्वतंत्रता आंदोलन के एक नेता के रूप में तो सम्मान करता था लेकिन सामाजिक एवं राजनीतिक कुरीतियों से संबंधित गांधी जी के समाधान से समाजवादी न केवल असहमत थे बल्कि बौद्धिक दृष्टि से वे खुद को उत्कृष्ट भी मानते थे।

मई 1934 में मसानी को गांधी जी की ओर से एक निमंत्रण मिला कि वह उड़ीसा की उनकी दस दिनों की पद-यात्रा में उनके साथ रहें। यह यात्रा छुआछूत समस्या के निवारण को समर्पित थी। उन्हें यह निमंत्रण क्यों मिला, इसके बारे में वह बहुत निश्चित नहीं थे क्योंकि उन्हें यह तक याद

नहीं कि वह पहली बार गांधी जी से कब और कैसे मिले थे। "मैं तो बस इतना ही कह सकता हूं कि मेरे पिता गांधी जी को खूब अच्छी तरह जानते थे, संभवतः उन्होंने ही गांधी जी से मेरी मुलाकात करवाई होगी। इस निमंत्रण को स्वीकार करने के पीछे मेरी मंशा यही रही होगी कि मैं उन्हें यह बात समझा सकूं कि क्यों हम लोग ठीक और वह गलत हैं।"

मसानी के यात्रा-कार्यक्रम के ब्यौरे को यहां उद्धृत करना दिलचस्प रहेगा। उन्होंने गौर किया कि अधिकांश पद-यात्राओं की दिनचर्या लगभग समान रहने वाली थी और ऐसी अनेक पद-यात्राएं आयोजित होनी थीं :

> हमारी पद-यात्राओं के दौरान दैनिक कार्यक्रम लगभग पूर्व-निर्धारित रहता था। हमें सुबह चार बजे उठकर पहले प्रार्थना-सभा में शामिल होना होता था और मेरे लिए इसका सबसे लुभावना हिस्सा होता था 'रघुपति राघव राजा राम' भजन को गाना और सुनना और लोगबाग तो इस सामूहिक गान के समय लय में तालियां भी बजाते रहते थे।
>
> लगभग 5 बजे लोग यात्रा शुरू करते और चार मील पैदल चलकर अगले गांव में दिन भर के लिए वहां ठहरते। हम लोग जहां ठहरते, वह अक्सर कोई न कोई स्कूल या छात्रावास होता था और गांधी जी वहां पहुंचने के बाद स्थानीय कार्यकर्ताओं से एक या दो के समूह में मिलते। स्थानीय रचनात्मक काम, छुआछूत के विरुद्ध संघर्ष और कार्यकर्ताओं को परेशान करने वाली समस्याओं पर चर्चा होती। सूर्यास्त से ठीक पहले गोधूलि बेला में हम अपनी यात्रा फिर से शुरू कर देते थे और चार मील आगे गांव में रात्रि-विश्राम के लिए रुकते। इस तरह हम एक दिन में दो गांवों में जाते थे।

गांधी जी ने प्रतिदिन एक घंटा सुबह और एक घंटा शाम को मसानी के लिए सुरक्षित रखा हुआ था। "इसका मतलब यह हुआ कि गांधी जी के साथ चलते हुए बीस घंटों तक की बातचीत हुई, और वह भी तब, जब उनका एक हाथ मेरे कंधे पर और दूसरा हाथ अगाथा हैरिसन (गांधी जी

की अनुयायी क़्वेकर यानी सोसाइटी ऑफ फ्रेंड्स की सदस्या) के कंधे पर होता था। अगाथा हैरिसन हमारी बातचीत में खूब दिलचस्पी लेती थीं। उन्होंने गांधी जी से अंग्रेजी में बातचीत करने का आग्रह भी किया था। लेकिन वह इस आग्रह को न मानकर मेरे साथ लगातार गुजराती में ही बातचीत करते रहे थे। मुझे तब यह उनकी रुखाई लगी थी। पर गांधी जी अगाथा के साथ अलग से बातचीत करने को तैयार थे और हमारे बीच क्या चल रहा है, इसके बारे में उन्होंने उसे स्पष्ट भी किया था। हां, एक गुजराती के साथ वह अंग्रेजी बोलने के लिए राजी नहीं हुए थे।''

मसानी को तब लगा था कि समाजवाद संबंधी गांधी जी की आपत्तियों को 'कम करने' में वह कुछ हद तक सफल हो गए हैं लेकिन उन्होंने अपनी भूल को मानते हुए लिखा : ''मुझे इस बात का अहसास तक न था कि रेशमी दस्ताने के भीतर कवच जैसी मुट्ठी छिपी है! समाजवाद और राष्ट्रीयकरण संबंधी उनकी आपत्तियां मेरे विचारों से बिल्कुल अलग तरह की थीं। उनका सरकारी स्वामित्व तथा नियंत्रण में विश्वास न था। उनका कहना था कि किसी फैक्टरी को वहां काम करने वाले श्रमिकों द्वारा समुदाय के निमित्त 'ट्रस्टीशिप' के आधार पर चलाया जाना चाहिए। इस व्यवस्था को ही वह समाजवाद कहते थे। मैं मन ही मन सोचता रहा कि राजनीतिक शब्दावली को लेकर वह कितने अज्ञानी हैं! इस बात का खुलासा तब हुआ, जब मैं 1955 में 'श्रमिकों द्वारा नियंत्रण' का अध्ययन करने के उद्देश्य से यूगोस्लाविया गया हुआ था। मुझे यूगोस्लाविया के कम्युनिस्टों ने तब स्पष्ट किया था कि किसी उद्यम का, समुदाय के निमित्त, श्रमिकों तथा प्रबंधकों द्वारा ट्रस्टी के रूप में संचालन ही साम्यवाद है। तब मैंने खिन्न होकर कहा था कि इस विचार की जानकारी मुझे सन् 1934 में ही मिल गई थी और वह भी 'बूढ़े प्रतिक्रियावादी' महात्मा गांधी के मुख से।''

दस दिनों की पद-यात्रा के बाद मसानी के आगे गांधी जी ने प्रस्ताव रखा कि वह उन्हें पूरे देश में कहीं भी अपनी पसंद के ''किसी एक या एक से अधिक गांवों में'' अपने विचारों को लागू करने की पूरी आजादी देंगे, यदि वह लगातार उस गांव में एक साल तक रहने को तैयार हों। यह स्वाभाविक ही था कि मसानी गांधी जी के इस प्रस्ताव से अत्यधिक

प्रसन्न हुए। "निस्संदेह गांधी जी, मेरे जोश से प्रभावित होकर, यह जानने को उत्सुक थे कि मेरा जोश भारत के किसी गांव में एक साल तक बना भी रहता है या नहीं और यह भी कि भारतीय किसान की मानसिकता को समझ लेने के बाद मैं अपनी सोच में कैसा बदलाव लाऊंगा। एक तरह से यह बात मेरे प्रति सम्मान की सूचक थी लेकिन मैं उनके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सका यद्यपि मैं अपने विचारों के प्रचार-कार्य में पूरी तरह जुटना चाहता था। मुझे यह भी लगा कि शायद उनके द्वारा बिछाया गया यह एक तरह का जाल था ताकि वह मुझे अपने विचारों में ढाल सकें! मेरा ख्याल है कि उनके प्रति इस संदेहमूलक धारणा को आश्रय देकर मैंने उनके प्रति अन्याय किया था।"

उड़ीसा की पद-यात्रा से वापिस लौटने से पहले मसानी, गांधी जी के पास, समाजवाद तथा कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी संबंधी अपने लिखित विचारों के साथ-साथ एक प्रश्नावली भी छोड़ आए थे और इसके अलावा कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के पहले अखिल भारतीय सम्मेलन में पारित प्रस्ताव भी। कुछ दिनों बाद उन्हें गांधी जी का टाइप किया हुआ दो पृष्ठों का उत्तर प्राप्त हुआ। इसके साथ संलग्न 29 मई, 1934 के पत्र में गांधी जी ने अन्य बातों के अलावा यह लिखा था : "जहां तक प्रस्तावों का संबंध है, मुझे इनके बारे में कुछ खास कहने की जरूरत नहीं होती, यदि आपका कार्यक्रम ठोस होता। पर मुझे ऐसा नहीं लगता। यह प्रस्ताव शब्दाडंबर से ज्यादा कुछ नहीं, इसमें व्यर्थ का फैलाव है..."

पाठकों के लिए यह जानना बहुत महत्वपूर्ण होगा कि मसानी के प्रश्नों के, गांधी जी ने, क्या उत्तर दिए थे क्योंकि दस वर्ष बाद जब समाजवाद पर पुनर्विचार करते हुए उन्होंने अपना मौलिक तथा प्रसिद्ध निबंध लिखा था, तब गांधी जी के ये उत्तर इसका आधार बने थे। पंद्रह वर्ष बाद मसानी ने सी.राजगोपालाचारी के साथ मिलकर जब 'स्वतंत्र पार्टी' का गठन किया और पार्टी के लिए जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया, उन पर गांधी जी के दर्शन का गहरा प्रभाव था।

गांधी जी के उत्तर का पहला विषय 'भारतीय रजवाड़ों के शासन का

उन्मूलन' से संबद्ध था। उनके अनुसार 'सत्ता का यह झूठा दावा था क्योंकि यहां किसी पार्टी का शासन नहीं था अथवा यह उस पुर्तगाली और फ्रांसीसी सत्ता के उन्मूलन के समान था, जो पुर्तगाली और फ्रांसीसी भारत के रूप में यहां विद्यमान हैं। इसे हम दुर्भाग्यपूर्ण ही कहेंगे; हां, भारत का विघटन एक ऐसी तथ्यात्मक सचाई है जिसकी अनदेखी नहीं की जा सकती। निस्संदेह, जिसे हम ब्रिटिश भारत कहते हैं, उस पर ध्यान केंद्रित करना पर्याप्त होगा। सिद्धांततः मैं रजवाड़ों के उन्मूलन का पक्षधर नहीं हूं, पर मैं जनतंत्र के सच्चे स्वरूप के अनुरूप इसमें सुधार लाने तथा संशोधन करने के पक्ष में जरूर हूं।'

उनके उत्तर का दूसरा विषय था 'उत्पादन, वितरण और विनिमय के सभी साधनों का राष्ट्रीयकरण', जिसे उन्होंने 'अति-व्याप्त' होने के कारण अस्वीकार्य बताया था। 'रवींद्रनाथ टैगोर', उन्होंने कहा, 'अद्भुत उत्पादन के साधन बने हुए हैं। मुझे नहीं पता कि वह अपने राष्ट्रीयकरण के लिए राजी हो जाएंगे।'

'विदेश व्यापार पर शासन के एकाधिकार' के प्रश्न पर, गांधी जी ने एक प्रति-प्रश्न पूछा था : 'क्या शासन को स्वयं को प्राप्त इतने अधिक अधिकारों से संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए? क्या उसे इतने सारे अधिकारों को एक साथ लागू कर देना चाहिए, जबकि इसकी जरूरत उसे शायद न भी हो? उन्होंने कहा था कि 'जमींदारी के उन्मूलन का सीधा-सा मतलब है जमींदारी और ताल्लुकेदारी के अंतर्गत आने वाले भूभाग पर अनधिकार कब्जा करना। मैं इस उन्मूलन के पक्ष में नहीं हूं लेकिन जमींदारों और रियाया के परस्पर संबंधों के सुधारने का पक्षधर जरूर हूं।'

गांधी जी के ये विचार मुझे आज बेहद तर्कशील तथा व्यावहारिक लग रहे हैं। वस्तुतः मेरा अपना दृष्टिकोण भी आगे चलकर गांधी जी के विचारों के अनुरूप हो चला था लेकिन मुझे जब उनके ये उत्तर प्राप्त हुए थे, तब मैं भौंचक्का रह गया था। मुझे उनके ये विचार तब 'प्रतिक्रियावादी' लगे थे और पद-यात्रा के दौरान मेरी उनसे जो बातचीत होती रही थी, उसके अनुकूल तो बिल्कुल महसूस नहीं हुए थे।

मसानी ने गांधी जी को अपने जवाब में लिखा कि उनके उत्तर खुद गांधी जी के 'प्रगतिशील' दृष्टिकोण से मेल खाते नहीं दिखते : "मुझे लगता है कि आपके उत्तरों को यथारूप प्रकाशित कर देने के दो परिणाम होंगे। पहला, हजारों युवा कांग्रेसी यह समझेंगे कि आप उनके आदर्शों के कट्टर विरोधी हैं और इससे पहले से व्याप्त इस प्रवृत्ति को बल मिलेगा कि समाजवादी विचारधारा के लोग कांग्रेस को छोड़ देंगे। दूसरा, दक्षिणपंथी कांग्रेसी हम पर हमला बोलने के लिए प्रोत्साहित महसूस करेंगे। मुझे विश्वास है कि आप इन दोनों स्थितियों में से किसी के लिए भी राजी नहीं होंगे।" मसानी ने इन उत्तरों को तब तक प्रकाशित करने के लिए स्थगित कर दिया, जब तक कि वह गांधी जी से दोबारा मिल नहीं लेते। गांधी जी के उत्तरों से पता चलता है कि लोगों द्वारा गांधी जी को प्रदत्त 'महात्मा' संबोधन किस कदर उपयुक्त था।

मसानी की बात का बुरा मानने के बजाय गांधी जी ने उनसे मुलाकात के लिए अपनी स्वीकृति दे दी। अपनी बंबई यात्रा के दौरान उन्होंने मसानी को ईगतपुरी रेलवे स्टेशन पर आने के लिए कहा। "उनकी इस उदारता का परिचय हम युवा समाजवादियों को कई बार मिला", मसानी ने इसकी हामी भरते हुए लिखा है। ईगतपुरी से बंबई तक की रेल यात्रा के दौरान (यह यात्रा कुल दो या तीन घंटे की रही होगी) मसानी ने गांधी जी को अपने दृष्टिकोण पर पुनर्विचार करने का अनुरोध किया। गांधी जी की प्रतिक्रिया ने मसानी को एक बार फिर भौंचक कर दिया। "अपनी ढिठाई पर आज मुझे हैरत होती है लेकिन तब वह बहुत उदार थे," मसानी ने लिखा। "उन्होंने अपने सेक्रेटरी को पुकारा (उनके सक्रेटरी अपने टाइपराइटर सहित हमेशा उनके साथ यात्रा करते थे—इस अर्थ में वह अति आधुनिक थे) और उन्हें अपना उत्तर लिखवाना शुरू किया। जब यह उत्तर मेरे पास पहुंचा तो इस पर बाकायदा मोहर सहित क्रमांक 4126 का उल्लेख था। उनका इससे पहले मुझे प्राप्त पत्र केंद्रापारा, उड़ीसा से लिखा गया था और उसका क्रमांक 4125 था। गांधी जी द्वारा 14 जून, 1934 को मुझे लिखा गया पत्र पहले पत्र की तुलना में कहीं अधिक सकारात्मक था और सहयोग की भावना से भरपूर था और इसका पाठ इस प्रकार था :

प्रिय मसानी—आप मेरे पास जो प्रश्नावली तथा कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का कार्यक्रम छोड़ गए थे, मैंने इन्हें पढ़ लिया है।

'मैं कांग्रेस में सोशलिस्ट पार्टी के उदय का स्वागत करता हूं। लेकिन मैं इसके कार्यक्रम को भी, जो आप मेरे पास मुद्रित पुस्तिका के रूप में छोड़ गए थे, पसंद करता हूं, इसके बारे में पक्के तौर पर कह नहीं सकता। भारतीय परिस्थितियों की इसमें उपेक्षा की गई है और इसके अनेक प्रस्तावों में निहित यह मान्यता भी मुझे पसंद नहीं कि वर्ग और सामान्य जनसमूह अथवा श्रमिकों और पूंजीपतियों में अनिवार्य रूप से विरोध रहता है और ये परस्पर हित में कभी काम नहीं कर सकते। मेरा इससे संबंधित दीर्घ अनुभव इस सिद्धांत के ठीक विपरीत है। मजदूरों या श्रमिकों के लिए जरूरी यह है कि वे अपने अधिकारों से परिचित हों और यह भी जानते हों कि इनकी रक्षा कैसे करनी है। किसी भी अधिकार की बिना दायित्व के कल्पना नहीं की जा सकती, अतः मेरी राय है कि कोई भी घोषणा-पत्र तब तक अधूरा माना जाएगा, जब तक कि उसमें अपने दायित्व को निभाने पर बल नहीं दिया जाता और इस दायित्व को परिभाषित नहीं किया जाता।'

महत्वपूर्ण बात यह थी कि उन्होंने हमारे नारों की निंदा करने के बजाय बात को वहीं रोक दिया था। अपने खास गांधीवादी लहज़े में विषय को बदलते हुए उन्होंने कहा : 'मैं समझता हूं कि इस पड़ाव पर आप अपने कार्यक्रम की मुझसे सूत्रवार समीक्षा नहीं चाहते, पर आपकी यदि ऐसी इच्छा हो और आप मेरी व्यस्तता को महत्व देते हों तो मैं इस पर चर्चा करने के लिए समय निर्धारित कर दूंगा और तब हम आपके सारे कार्यक्रम पर विस्तार से बात कर सकते हैं।'

गांधी जी के उत्तर पर टिप्पणी करते हुए मसानी ने स्पष्ट किया : "जब मैं 'गांधीवादी लहज़े' पद का प्रयोग करता हूं तो मेरा तात्पर्य उनका मजाक उड़ाना नहीं है। यह सच है कि गांधी जी एक चतुर राजनीतिज्ञ होने के साथ-साथ महात्मा भी थे लेकिन वह सच्चे अर्थों में एक राजनेता थे और उनके कर्म में कभी अवसरवादिता नहीं दिखी हालांकि वह अनेक विषयों पर आत्म-विरोधी वक्तव्य भी दे देते थे।"

तब क्या इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया जाए कि मसानी मानते थे, "गांधी जी जैसा महान व्यक्ति मैंने आज तक नहीं देखा।"

गांधी जी के सचिव प्यारेलाल ने, इस आशंका से प्रेरित होकर कि कम्युनिस्ट "गांधी जी के बलात् मतप्रवर्तन और विषय को उलझाने" के प्रयासों में लगे हुए हैं, जून 1947 में मसानी को गांधी जी के लिए कम्युनिस्टों पर एक टिप्पणी लिखकर देने के लिए कहा। मसानी ने यह टिप्पणी लिखकर उन्हें भेज दी और साथ ही *सोशलिज़्म_रिकंसिडर्ड* की एक प्रति भी संलग्न कर दी।

गांधी जी की ओर से इस पत्र का जवाब देते हुए प्यारेलाल ने लिखा : "गांधी जी ने बड़ी दिलचस्पी से आपका भेजा सोशलिज़्म संबंधी ब्रोशर पढ़ा और स्टालिन के रूस संबंधी आपके अवलोकन से बहुत प्रभावित हुए।"

स्पष्ट है कि मसानी यद्यपि शुरू में गांधीवादी दर्शन के कटु आलोचक रहे थे, पर बाद में गांधी जी के प्रशंसक बन गए और उनके विचारों से खूब प्रभावित हुए। पर सवाल उठता है कि गांधी जी से मसानी ने क्या सीखा था?

"गांधी जी," मसानी ने लिखा है, "मात्र राजनीतिज्ञ होने के अलावा कई अर्थों में क्रांतिकारी भी थे। मेरे जैसे आधुनिक युवक को शुरू में वह पुराने जीवाश्म की तरह लगे थे। वह ऐसे हिंदू थे जो जातिप्रथा को मानते थे, भले ही उसके आदर्शीकृत और परिष्कृत रूप में; वह ब्रह्मचर्य के हिमायती थे, गर्भ-निरोध के विरोधी थे और नशाबंदी में विश्वास करते थे। लेकिन उनके इस रूढ़िवादी कवच के नीचे एक सच्चा क्रांतिकारी कार्यरत था।" अपनी बात की पुष्टि के लिए मसानी ने एक ऐसी घटना का उल्लेख किया है, जो गांधी जी के आश्रम में ही घटित हुई थी। आश्रम में एक व्यक्ति ऐसा था जिसे उस विवाहित महिला कार्यकर्त्री से प्रेम हो गया जिसे पति ने छोड़ रखा था हालांकि उसका पति कुछ सालों के अंतराल से उससे मिलने बराबर आता रहता था। वह व्यक्ति तथा महिला कार्यकर्त्री अपनी समस्या लेकर गांधी जी के पास पहुंचे। उन्होंने उन दोनों को शादी कर साथ रहने की सलाह दी। जब उन्हें बताया गया कि यह कानून-सम्मत नहीं माना जाएगा क्योंकि यह कदम एक साथ दो विवाह करने के समान होगा तो उन्होंने इस एतराज को नकारते हुए कहा कि अनुचित कानून को तोड़ा ही जाना

चाहिए। जहां तक उनका संबंध था, महिला शादी करने के लिए स्वतंत्र थी, बेशक दोषी पाए जाने पर उसे जेल जाने के लिए भी तैयार रहना चाहिए और जेल से छूटने के बाद दोनों को फिर से साथ रहने लगना चाहिए। आश्रमवासी इसके बाद राजी हो गए और गांधी जी ने विवाह-समारोह में शामिल होकर युगल को आशीर्वाद भी दिया।

इस प्रसंग से मसानी ने यह शिक्षा ली कि वह न केवल ब्रिटिश साम्राज्यवादी कानून को तोड़ने को उत्सुक थे बल्कि हर उस अनुचित कानून को तोड़ने को तैयार थे, वह चाहे सामाजिक हो अथवा किसी अन्य क्षेत्र से संबंधित, यदि उससे व्यक्ति के अंतःकरण की हिंसा होती हो। "सत्याग्रह का इस्तेमाल न केवल राजनीतिक परिवर्तन के लिए बल्कि सामाजिक सुधार के लिए भी किया जा सकता है।"

गांधी जी से मसानी ने जो अन्य शिक्षाएं लीं, वे थीं :

★ हमें शासन-तंत्र तथा उसे चलाने वाले लोगों में अंतर करना चाहिए। शासन-तंत्र दुष्ट हो सकता है, अतः उसे नष्ट करने की जरूरत महसूस हो सकती है लेकिन जरूरी नहीं कि इस तंत्र से जुड़े लोग भी बुरे हों।

★ साध्य और साधन अंतर्संबंधित हैं और साध्य, साधनों के औचित्य को सिद्ध का, आधार नहीं हो सकता। यदि साधन मलिन हैं तो अच्छा उद्देश्य भी दूषित माना जाएगा।

★ राज्य के गरिमा-गान और आर्थिक तथा राजनीतिक सत्ता के विकेंद्रीकरण के महत्व को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करने से बचना चाहिए।

★ जो सिद्धांत अथवा कार्रवाई पुरानी पड़ गई हो, उससे चिपके नहीं रहना चाहिए। ऐसे मामलों में अपने दुराग्रहों को अपनाए रखने को बेवकूफी ही कहा जाएगा।

★ सर्चलाइट का रुख भीतर की तरफ होना चाहिए।

अपने संस्मरणों की पुस्तक *ब्लिस वाज़ इन दैट डॉन...* में मसानी पाठकों को यह याद कराना नहीं भूलते, "आखिर गांधी जी को मारने वाला व्यक्ति भारतीय ही था। आज भारतीय मस्तिष्क और भारतीय जिह्वा उनकी आत्मा को मारने में जुटे हुए हैं।"

6

समाजवाद के बारे में पुनर्विचार

मसानी के समाजवाद से दूर जाने के दो कारण थे—'वाम' के प्रति सामान्यतः और विशेष रूप से मार्क्सवाद से मोहभंग होना। दूसरे कारण की पृष्ठभूमि में गांधी जी का प्रभाव था, जिस पर पिछले अध्याय में हम चर्चा कर चुके हैं।

लंदन स्कूल ऑफ इकनॉमिक्स से शिक्षित और ब्रिटिश लेबर पार्टी सरीखे संगठन से प्रेरित समाजवादी मसानी को मार्क्सवादी-लेनिनवादी प्रकार के समाजवाद का तभी परिचय मिल गया था, जब यह आंदोलन मात्र दस वर्ष पुराना था (बोल्शेविक क्रांति अक्तूबर 1917 में हुई थी और मसानी ने 1927 में सोवियत संघ की पहली यात्रा की थी)। इसके दस वर्ष बाद, 1937 में, जब वह दूसरी बार सोवियत संघ गए तो उन्हें एक बार फिर से इसे नजदीक से देखने-परखने का अवसर मिला था। पहली यात्रा एक विद्यार्थी के रूप में की गई थी, जबकि दूसरी यात्रा एक समाजवादी राजनीतिज्ञ के रूप में हुई थी और वह भी भारत के स्वतंत्रता-संघर्ष के एक भागीदार के रूप में।

मसानी का 'वाम' विचारधारा, विशेष रूप से मार्क्सवाद-लेनिनवाद अथवा सर्वप्रचलित नाम साम्यवाद से मोहभंग सोवियत संघ की दूसरी यात्रा के दौरान हुआ था। इस यात्रा के बाद उनके द्वारा लिखित तथा प्रकाशित लघु पुस्तक *सोवियत साइडलाईट्स* में उन्होंने सोवियत संघ की प्रशंसा करने के साथ-साथ अपने अनेक संदेह भी प्रकट किए हैं—ये ऐसी स्थितियों से संबंधित थे, जो उनकी नज़र में समाजवादी विचार के अनुकूल नहीं थे।

पर उन्होंने भी अपने इन संदेहों पर अन्य अनेक लोगों की तरह पर्दा डालने की कोशिश की थी, जैसेकि बट्रेण्ड रसेल और आर्थर कोएस्लर ने किया था। ये लोग 'सोवियत प्रयोग' के घोर प्रशंसक थे और लंबे समय तक सचाई को नकारते रहे थे, पर आगे चलकर इनका भी मोहभंग हुआ था। मसानी के लिए अपने संदेहों को सार्वजनिक करने तथा उससे मोहभंग होने का कारण संभवतः भारत में साम्यवाद के समर्थकों का अर्थात भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीआई) का व्यवहार था।

सोवियत साम्यवाद के प्रति उनके मोहभंग ने उन्हें अपने मार्क्सवादी मताग्रहों और सामाजिक आस्थाओं पर पुनर्विचार करने के लिए विवश कर दिया। इसके परिणामस्वरूप उन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी छोड़ने के 5 साल बाद मार्च 1944 में *सोशलिज़्म रिकंसिडर्ड* नामक एक मौलिक निबंध लिखा। इस निबंध में उन्होंने मार्क्सवाद की कुछ स्थापनाओं पर प्रश्नचिह्न लगाए थे। इस निबंध के प्रथम संस्करण के प्राक्कथन में उन्होंने लिखा था : ''इस निबंध को लिखने का मेरा मुख्य उद्देश्य यह रहा है कि भारत के समाजवादी अपने उद्देश्यों को फिर से परिभाषित करने तथा अपने साधनों के पुनरीक्षण करने को लेकर उत्साहित महसूस करें... मैंने जो संदेह व्यक्त किए हैं, हो सकता है कि, उससे कुछ मित्र परेशान और क्षुब्ध अनुभव करें और मुझे विचारधारा से भटकने का दोषी पाएं। मेरी उनसे यही अपील है कि असल में तथ्य परेशान करने वाले हैं और जो लोग सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में न्याय होते देखना चाहते हैं, वे अपनी आंखें बंद रखने या अपना मुंह सिलने जैसी एय्याशी में संलग्न नहीं रह सकते...''

वस्तुतः उनके अनेक समाजवादी मित्र 'विचारधारा से भटकने' की बात को लेकर मसानी को कभी माफ नहीं कर सके। मसानी ने अपने संस्मरणों में इस स्थिति पर व्यंग्य भी किया है और सोशलिस्ट पार्टी के मुखपत्र **जनता** में उन्होंने इस प्रसंग पर एक निबंध ही लिख डाला था जिसका शीर्षक था 'द फालन ऐन्जल ऑफ सोशलिज़्म'।

कुछ लोग जैसेकि जयप्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन, कमलाशंकर पंड्या, यूसुफ मेहरअली और अशोक मेहता तो उनके मित्र बने रहे लेकिन

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के अन्य हठधर्मी कामरेड उनके साथ अवहेलना का व्यवहार ही करते रहे। यूसुफ मेहरअली के साथ मसानी की दोस्ती इस कदर पक्की थी कि जब मसानी ने सीएसपी की प्राथमिक सदस्यता से त्यागपत्र देने का फैसला किया, तब मसानी के निर्णय से असहमति के बावजूद उन्होंने त्यागपत्र लिखने में उनकी मदद की थी।

दूसरी ओर राजा जी ने, स्वतंत्रता-संघर्ष के दिनों में वह मसानी के समाजवादी विचारों के कटु आलोचक रहे थे, लिखा था : "तुम्हारी छोटी-सी किताब न केवल सचाई का बयान करती है बल्कि यह बहुत सुंदर छपी भी है।" राजा जी ने अर्थशास्त्र, लोगों तथा विषयों से संबंधित अपनी बुनियादी धारणाओं में कोई परिवर्तन नहीं किया था। खुद मसानी भी अनेक धारणाओं के मामले में, अपने पिता रुस्तम मसानी को, ज्यादा नजदीक पाते थे और जवाहरलाल नेहरू के विचारों से वह दूर होने लगे थे। इसकी वजह से तीन वर्ष बाद, 1947 में, जब भारत स्वतंत्र हो चुका था, मसानी को सत्ता में फिर से पैर जमाना बहुत भारी पड़ा।

सोशलिज़्म रिकंसिडर्ड निबंध उनके सार्वजनिक जीवन में एक नया मोड़ साबित हुआ। यह सब एकाएक नहीं हो गया था बल्कि इसकी पृष्ठभूमि में 1934 का वह वर्ष था, जब उन्होंने गांधी जी के साथ उड़ीसा में दस दिन बिताए थे और सन् 1937 में सोवियत संघ की दूसरी यात्रा की थी। सोवियत संघ के प्रति उनके संदेह तब और भी पुख्ता हो गए, जब उन्हें कम्युनिस्टों के साथ काम करने का मौका मिला तथा उनकी विचारधारात्मक लंबी बहसों तथा रणनीतियों से साबिका पड़ा।

मसानी भावुक व्यक्ति नहीं थे। उनके जीवन में बुद्धि के बजाय हृदय को हावी होने देने के अवसर विरले ही रहे होंगे। उनके साथ बिताए चार दशकों के अपने संबंधों के आधार पर मैं यह बात दावे के साथ कह सकता हूं। उनकी यह विशेषता जीवन के हर मोड़ पर मुझे दिखाई दी थी।

"मार्क्सवाद की कम-से-कम चार धारणाएं ऐसी हैं—कुछ अधिक भी हो सकती हैं—जिन पर मेरे हिसाब से पुनर्विचार होना चाहिए," मसानी ने अपने उक्त निबंध में लिखा था :

इनमें से पहली धारणा यह है कि निजी संपत्ति के उन्मूलन और इसके राष्ट्रीयकरण से आर्थिक लोकतंत्र एवं वर्गहीन समाज का स्वतः निर्माण हो जाएगा। रूस के उदाहरण से यह सिद्ध हो चुका है कि ऐसा होना संभव नहीं है।

दूसरी मार्क्सवादी धारणा जिस पर पुनर्विचार होना चाहिए, वह यह है कि सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व न केवल संभव है बल्कि समाजवाद तक पहुंचने के लिए यह एक जरूरी संक्रमण अवस्था है! इसके पीछे सिद्धांत यह है कि अपना काम पूरा कर लेने के बाद अधिनायकत्व समाप्त हो जाएगा और लेनिन ने, एंगेल्स का अनुसरण करते हुए, कहा है : 'राज्य तब निस्तेज हो जाएगा।' रूस में सोवियत सरकार व्यक्ति-स्वातंत्र्य पर, अपनी निरोधक सत्ता के संदर्भ में, जरा-सी भी छूट देने को तैयार नहीं, 'निस्तेज' होने की बात तो बहुत दूर की लगती है।

मार्क्सवाद का तीसरा विश्वास, जो पिछले दो दशकों में खरा उतरता दिखाई नहीं दे रहा, वह यह है कि श्रमजीवी-वर्ग की सामूहिक स्वार्थपरता और संपत्ति-स्वामी वर्ग के प्रति उसकी सामूहिक घृणा को उकसा कर समाजवाद लाया जा सकता है। दुर्भाग्यवश श्रमजीवियों से सामूहिक स्वार्थपरता की अपील अक्सर उन्हें शोषण एवं अन्याय की तरफ झुका देती है। हम पहले से ही जानते हैं कि ब्रिटिश श्रमजीवी-वर्ग द्वारा साम्राज्य के लाभ में से एक छोटा-सा अंश पा लेने के बाद वहां की लेबर पार्टी की क्या हालत बन गई है—वह साम्राज्यवाद के स्थायीकरण की समर्थक पार्टी बन गई है, जो विश्व की समाजवादी व्यवस्था की विपरीत स्थिति है।

एक और धारणा, जिसे आज भी सभी समाजवादी मानते हैं, वह यह है कि पूंजीवाद का एकमात्र विकल्प समाजवाद है। मैं कबूल करता हूं कि 1937 या 1938 तक इसमें मेरा भी यकीन रहा। हमें पूंजीवाद को नष्ट कर देना है और, जैसे रात के बाद सवेरा आता है, उसी तरह तब समाजवाद का सवेरा भी आ जाएगा। क्या ऐसा *ही* घटित होगा? क्या कोई 'तीसरी स्थिति' इसमें से उभरकर सामने नहीं आ जाएगी?...

मार्क्सवाद की उपरोक्त चार धारणाओं पर हमने जो प्रश्नचिह्न लगाया है, इसका सीधा तात्पर्य यह है कि बीसवीं शताब्दी की बची हुई अवधि में, समाजवादी अब तक जिन बातों पर बल देता रहा है, उसे अब बदलना होगा। अतः हमें राष्ट्रीयकरण अथवा संपत्ति के राज्य-स्वामित्व पर उचित ढंग से विचार करना होगा। यह महसूस किया जा रहा है कि संपत्ति के स्वामित्व का उतना महत्व नहीं, जितना उसके नियंत्रण का। यही वजह है कि राष्ट्रीयकरण अब सारभूत तत्व नहीं रह गया है। और इस बात पर भी चर्चा हो रही है कि हमारी यह जरूरत है भी या नहीं...

राज्य किसका है? यह एक बहुत बड़ा सवाल है। क्योंकि सामूहिक अर्थव्यवस्था से व्यक्ति-स्वतंत्रता और राजनीतिक लोकतंत्र को खतरा रहता है, अतः आने वाले वर्षों में इन बातों को केंद्र में रखकर समाजवाद पर विचार करना होगा। मानव व्यक्तित्व के प्रति आदर एक ऐसा मुद्दा होने जा रहा है, जिसको आधार बनाकर बीसवीं शताब्दी में घमासान होने वाला है। ऐसा कोई भी व्यक्ति समाजवादी कहलाने का हकदार नहीं, यदि वह 'मानव के अधिकारों' के पक्ष में खड़ा नहीं होता।

यदि समाजवाद के लिए व्यक्ति-स्वतंत्रता और राजनीतिक लोकतंत्र को उसी तरह अनिवार्य मान लिया जाता है, जिस तरह आर्थिक समानता के लिए उसे अनिवार्य माना जाता है, तो समाजवाद को लाने के साधनों को भी साध्य के अनुरूप बनाना होगा। इसके लिए तब मार्क्सवाद के इस नारे को नकारना होगा कि 'साध्य को पाने के लिए सभी साधन न्यायसंगत होते हैं', जिसका एक व्यापक व्यावहारिक अर्थ यह निकलता है कि हर वह चीज—झूठ, फरेब, हत्या—न्यायसंगत है यदि उससे कम्युनिस्ट पार्टी को सहायता मिलती है... समाजवाद तो पवित्र हाथों से पवित्र साधनों से ही लाया जा सकता है। बौद्धिक ईमानदारी और सत्य के प्रति निष्ठा के बिना हमारी स्थिति जंगल में भटक जाने जैसी होगी।

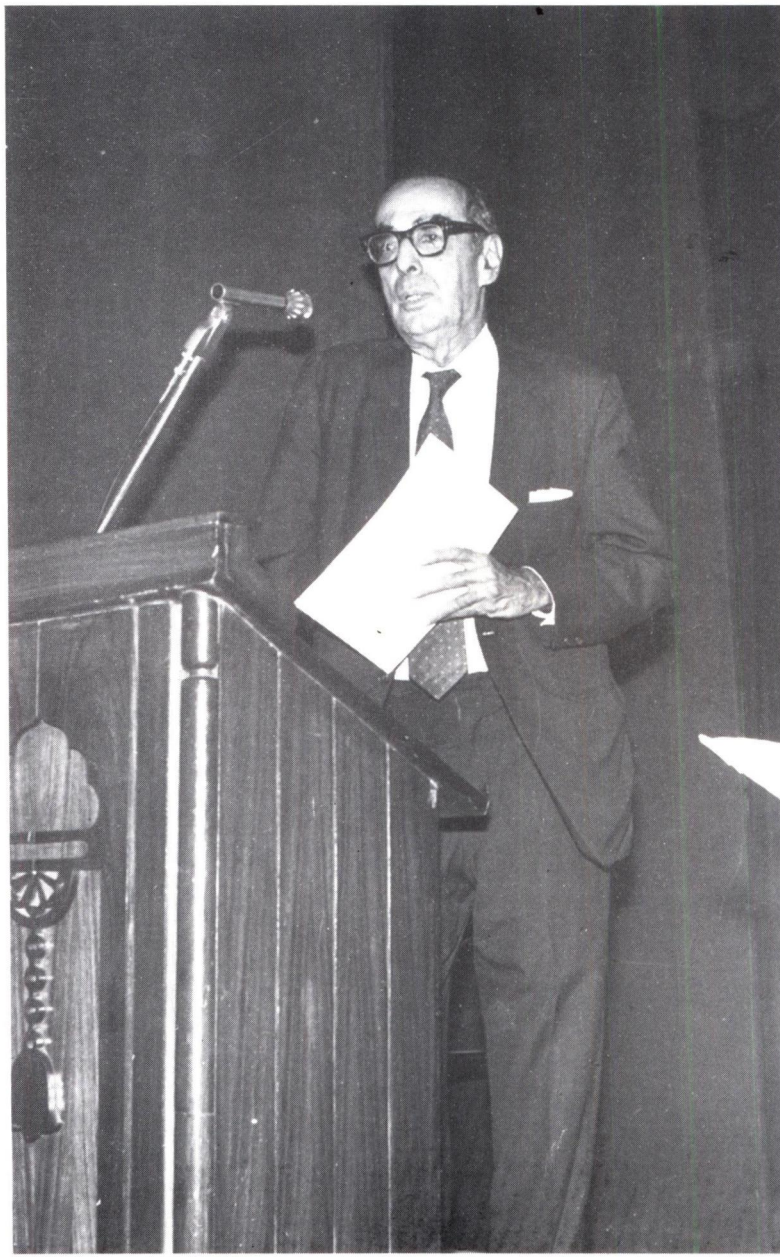
अतएव हम जैसे लोगों के सामने समस्या सामाजिक परिवर्तन की पद्धति को लेकर आती है क्योंकि यह परिवर्तन ऊर्जावान तो होना ही

चाहिए, साथ ही यह राज्य-विप्लव के समय होने वाली हिंसा से परहेज करने वाला और उसके बाद के अधिनायकत्व को स्थापित करने वाला भी नहीं होना चाहिए। इस संदर्भ में, मुझे लगता है, कि राजनीतिक विचार को विकसित करने में महात्मा गांधी का भी कुछ ऐसा योगदान रहा है। हर उस समाजवादी को इसका गौर से अध्ययन करना चाहिए, जो सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए, अपने शस्त्रागार में कारगर हथियार रखना चाहता है।

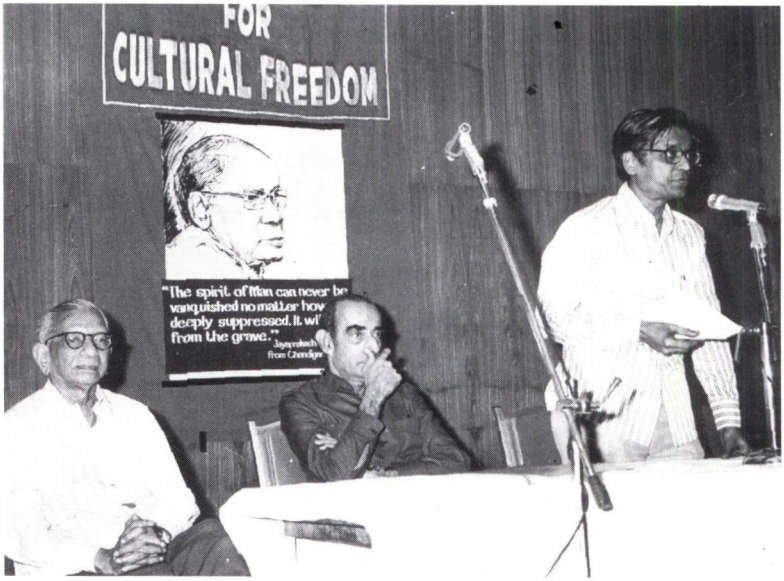
मसानी ने मार्क्स से गांधी तक की यात्रा तो जरूर की, पर उन्होंने समाजवाद का त्याग कभी नहीं किया। उन्होंने गांधीवाद को बिना जांचे-परखे या अंध-स्वीकृति के रूप में कभी नहीं अपनाया। उन्होंने *सोशलिज़्म रिकंसिडर्ड* में स्पष्ट किया है, "गांधीजी की शिक्षाएं किसी सुगठित आर्थिक विचार-पद्धति का हिस्सा नहीं हैं और न ही हमें इन्हें आंखें बंदकर अपना लेना चाहिए। हां, यह बात गौर करने लायक है कि गांधी जी ने आर्थिक बराबरी के महत्व पर हमेशा बल दिया। 'उनका सारा (रचनात्मक) कार्यक्रम', स्वयं उनका कहना है, 'यदि आर्थिक समानता की मजबूत नींव पर खड़ा नहीं होगा तो यह रेत पर बने ढांचे के समान ढह जाएगा'।"

सोशलिज़्म रिकंसिडर्ड के प्रकाशन के तीन वर्ष बाद, 1947 में, बंबई विश्वविद्यालय के स्कूल आफ इकनॉमिक्स एंड सोश्योलॉजी ने मसानी को रजत जयंती व्याख्यानमाला के लिए आमंत्रित किया था। इस अवसर पर उन्हें विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों और जनता के सामने समाजवाद संबंधी अपने पुनर्विचार को प्रस्तुत करने का अवसर मिला। उन्होंने इसे 'मिश्रित अर्थव्यवस्था के लिए एक अपील' कहा। भले ही मसानी इस तरह की अर्थव्यवस्था का प्रचार करने वाले पहले भारतीय राजनीतिज्ञ न हों, पर इस अवधारणा को आगे बढ़ाने वाले अग्रणी लोगों में से वह एक जरूर थे। आगे चलकर यह अवधारणा भारत की पंचवर्षीय योजनाओं का अंग बनी थी।

मसानी की 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' मध्यमार्ग को अपनाने की एक रीति थी और इसमें राज्य तथा नागरिक दोनों को अर्थव्यवस्था में अपनी-अपनी भूमिका निभानी थी—इस बात को सुनिश्चित करते हुए कि व्यक्ति और



मीनू मसानी



सांस्कृतिक स्वतंत्रता की भारतीय समिति द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम में वी बी कार्णिक और एस वी राजू के साथ



नानी पालकीवाला (संबोधित करते हुए) तथा एम आर पाई के साथ



सी राजागोपालाचारी (राजाजी) के साथ



मद्रास, 1967 में प्रेस कांफ्रेंस को संबोधित करते हुए



मुंबई में एक सभा को संबोधित करते हुए एन दांड़ेकर, ए डी श्रॉफ, पीलू मोदी और बी के मिस्त्री (बाएं से दाएं) के साथ



शीला के साथ

मुक्त समाज की स्वतंत्रता सुरक्षित रहे। सोवियत प्रयोग को देखते हुए उन्हें पूरा यकीन था कि राजनीतिक शक्ति तथा आर्थिक शक्ति के परस्पर मिल जाने से लोगों का दमन होगा। सवाल यह उठता है, "राज्य का स्वामित्व और उसके द्वारा उद्योगों का प्रबंधन क्या हमारी जरूरतों का सही जवाब है?" अन्य बातों के साथ-साथ मिश्रित अर्थव्यवस्था का समर्थन करते हुए उन्होंने कहा था :

> राज्य के स्वामित्व और उद्योगों की प्रबंधन संबंधी नीति के अस्वीकार का अर्थ यह नहीं है कि हम यथास्थिति को बनाए रखें। मैं इससे आगे बढ़कर, न तो किसी तुच्छ विकल्प के रूप में और न ही वास्तविक वस्तु के स्थान पर बीच के रास्ते के रूप में इसे प्रस्तुत कर रहा हूं बल्कि मैं उन्नीसवीं शताब्दी के तथाकथित 'वैज्ञानिक समाजवाद' के स्थान पर उसी साध्य को प्राप्त करने की कहीं अधिक वैज्ञानिक और आधुनिक कार्य-पद्धति को प्रस्तुत कर रहा हूं।
>
> मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाने के लिए किन्हीं विशिष्ट चीजों पर बल देना होता है। पहली चीज यह है कि हमारा दृष्टिकोण किसी भी किस्म के मताग्रह से मुक्त होना चाहिए। दूसरी चीज यह है कि भारत इतना विशाल देश है, इसलिए उत्पादन के सभी प्रकार के साधनों को एक साथ अपनाने का प्रयास किया जा सकता है। हम क्योंकि औद्योगिक क्रांति के आरंभिक चरण में ही हैं, अतः विद्यमान उद्यमों का राष्ट्रीयकरण हमारे सामने खड़ी समस्याओं को आनुषंगिक रूप से ही छू पाएगा। तीसरी चीज यह है कि हमारे देश की आर्थिक विचारधारा में महात्मा गांधी ने जो योगदान दिया है, उसका भरपूर उपयोग करना होगा अर्थात उद्योगों तथा उन पर नियंत्रण के विकेंद्रीकरण पर बल देना। चौथी चीज जो हमें करनी होगी, वह यह है कि उद्योगों पर राज्य के बजाय श्रमिकों के नियंत्रण पर बल देना और उद्योगों के प्रशासन एवं उससे प्राप्त फायदों पर श्रमिकों की हिस्सेदारी को बढ़ावा देना होगा। पांचवीं और अंतिम चीज यह है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था स्वामित्व और प्रबंधन पर कम और इस बात पर ज्यादा निर्भर करेगी कि समुदाय के हितों को सर्वोपरि माना जाता है अथवा नहीं।

इस संदर्भ में मसानी की एक प्रसिद्ध सूक्ति याद आ रही है। वह अक्सर कहा करते थे, "आप 'किसी चीज' को 'कुछ नहीं' से नहीं बदल सकते। आपको 'किसी चीज' को 'बेहतर चीज' से ही बदलना होगा।" अतएव उन्होंने अपने व्याख्यान का, मिश्रित अर्थव्यवस्था संबंधी अपनी अवधारणा को प्रस्तुत करते हुए, समापन इस प्रकार किया था :

> इन विचारों पर आधारित मिश्रित अर्थव्यवस्था का ढांचा कुछ इस प्रकार का होगा : इसके तीन क्षेत्र होंगे। पहला क्षेत्र वर्तमान उद्योगों का बहुत छोटा क्षेत्र होगा, जिसका राष्ट्रीयकरण भी किया जा सकता है। हम यहां स्पष्ट करना चाहेंगे कि किसी भी बुनियादी और प्रमुख उद्योग के संभावित राष्ट्रीयकरण की जरूरत को स्वीकार नहीं किया जाएगा। वस्तुतः यह एक खतरनाक भ्रांति है और कभी-कभी इन उपायों के विरोधी भी इसे सहजता से स्वीकार कर लेते हैं। अब हम जान चुके हैं कि राज्य के स्वामित्व और प्रबंधन से कुशलता को क्षति पहुंचती है और औद्योगिक विकास में बाधा आती है...अतः राष्ट्रीयकरण असाधारण मामलों में ही लागू होना चाहिए। इससे बचने का बुद्धिमत्तापूर्ण उपाय यही होगा कि किसी भी उद्योग का तब तक राष्ट्रीयकरण नहीं होना चाहिए, जब तक कि रॉयल कमीशन—अथवा गणतंत्र में रॉयल कमीशन का जो भी स्थान लेगा—ने सार्वजनिक रूप से किसी उद्योग की जांच न कर ली हो और उसके राष्ट्रीयकरण की सिफारिश न कर दी हो।
>
> दूसरा क्षेत्र बहुत व्यापक होगा और इसमें नए सार्वजनिक उद्यम शामिल रहेंगे। अधिकांश मामलों में ये वर्तमान उद्योगों के नए उद्योग या नए एकक होंगे क्योंकि मुक्त उद्योग द्वारा देश की जरूरतों को पूरा करने की संभावना कम दिखाई पड़ती है। इन दोनों क्षेत्रों में, सार्वजनिक उद्यमों तथा इन पर नियंत्रण करने वाले राजनीतिक प्राधिकरण जो समुदाय की ओर से इन पर अपना नियंत्रण रखे हुए हैं, वे इन उद्यमों की कार्य कुशलता और देश के हित-साधन पर निर्णायक प्रभाव डालेंगे।
>
> तीसरा और उद्योगों का सबसे बड़ा क्षेत्र मुक्त उद्यमों का होगा। इसे इस तौर पर समझना होगा। जैसेकि लुई फिशर ने कहा है, 'निजी

उद्यम आज सार्वजनिक उपयोगिता ही हैं।' इन्हें प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए और योजना एवं समन्वयन के लिए सभी तरह के आवश्यक प्रोत्साहन उपलब्ध कराए जाने चाहिए और इन पर कम-से-कम नियंत्रण रहना चाहिए। ये नियंत्रण किसी उद्योग में 5 प्रतिशत तो किसी में 25 प्रतिशत की दर से भिन्न-भिन्न स्तरों के होंगे।

राज्य का इस प्रकार का कार्यक्रम और मुक्त उद्यम वस्तुतः एकमात्र व्यावहारिक कार्यक्रम हो सकता है और आने वाले वर्षों में संभवतः भारत की कोई भी सरकार इसे अपना सकती है...

आगामी दस वर्षों तक उन्होंने अर्थव्यवस्था और राज्य के प्रभुत्व की सीमाबद्धता पर अपने विचारों को और भी परिष्कृत किया। गौर करने लायक बात यह है कि वह ऐसे किसी भी मताग्रह को त्यागने को तैयार थे, जो उनके मूलभूत विश्वास के विरुद्ध जाता हो अर्थात ऐसा मताग्रह जो समाज में व्यक्ति की केंद्रीय भूमिका और तत्कालीन उपलब्ध अनुभवसिद्ध आंकड़ों के विरुद्ध पड़ता हो।

7

आजीविका की तलाश

नवंबर 1939 में जब मसानी ने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी (सीएसपी) से त्यागपत्र दिया, तब उन्होंने न केवल पार्टी को बल्कि राजनीति को भी त्याग दिया था। उन्होंने ऐसा व्यक्तिगत कारणों से किया था—अपने लिए आजीविका जुटाने की खातिर। वह वकालत के काम में खास सफल नहीं रहे थे। उन्हें थोड़े ही केस मिलते, इससे कमाई ज्यादा नहीं होती थी। उन्होंने इसे अनियमित तथा आधे मन से किया गया पेशा कहा क्योंकि वह अपना सारा समय तो स्वतंत्रता-संघर्ष को दे देते थे।

सीएसपी का एक भी सहयोगी उनके इस निर्णय से खुश नहीं हुआ। वस्तुतः, राममनोहर लोहिया ने उनका त्यागपत्र पढ़ने के बाद, अपने उत्तर में लिखा था : "कुछ ही पत्र पढ़ने के बाद मुझे इतना अधिक दुख हुआ है, जितना कि आपके पत्र से। मैं विश्वास करूं कि आपकी यह अस्थायी स्थिति है। कोई उपयुक्त आजीविका जुटाने के आपके कारण के प्रति मेरी सहानुभूति तो हो सकती है, पर आपके इस कदम को मैं न तो ठीक समझता हूं और न ही मैं इसकी सराहना कर पाऊंगा। आप ऐसी स्थिति पर पहुंच चुके हैं कि कोई भी नौकरी आपके लिए तब तक उपयुक्त नहीं मानी जाएगी, जब तक वह आपको राजनीतिक गतिविधि की छूट न दे। मेरा ख्याल है कि आपको नरेंद्रदेव जी तथा जयप्रकाश से मिल लेना चाहिए। पार्टी को ठीक 'लाइन' पर पुनर्जीवित करना होगा अन्यथा 'वाम' पूरी तरह छिन्न-भिन्न

हो जाएगा। आपके अलावा कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसमें पर्याप्त संगठनात्मक योग्यता हो।''

मसानी सौभाग्यशाली थे कि उन्हें एक व्यावसायिक संस्था का ऐसा मालिक मिला जिसे उनके राजनीति में भाग लेने पर एतराज नहीं था। इस तरह वह न केवल अपनी नौकरी करते रहे बल्कि छह वर्ष बाद, 1945 में, एक कांग्रेसी प्रत्याशी के रूप में उन्होंने भारतीय विधान सभा का चुनाव भी लड़ा।

जब ऐसा हुआ, तब जेपी ने उन्हें लिखा : ''मैं बता नहीं सकता कि यह सब देखकर मुझे कितनी खुशी हो रही है। केवल इसलिए नहीं कि यह आपके लिए एक सम्मानजनक स्थिति है बल्कि इन दो बातों के लिए भी—कि आपके निर्णय से विधान सभा में कांग्रेस पार्टी को बहुत अधिक लाभ हुआ है और दूसरे, जिसका व्यक्तिगत रूप से मेरे लिए बहुत महत्व है, यह कि आप राजनीति में पुनर्प्रवेश करने जा रहे हैं। मैं एम.आर.मसानी के बिना भारतीय राजनीति की कल्पना तक नहीं कर सकता और आपके द्वारा राजनीतिक कार्य से संन्यास लेने को मैंने हमेशा बहुत बड़ी भूल माना है। आप टाटा के साथ अपने संबंध बनाए रखेंगे, यह बात आपके निर्णय के महत्व को कम नहीं करती। आदमी को जीना चाहिए और अपने श्रम के बल पर जीने से बड़ी सम्मानजनक बात कोई नहीं हो सकती, जबकि हम में से अधिकांश को इससे भिन्न तरीकों को अपनाने के लिए विवश होना पड़ा है। मैं नए काम में आपकी भरपूर सफलता की कामना करता हूं।''

सन् 1928 और 1939 के दौरान के जीवन के बारे में मसानी ने महसूस किया कि एक समाजवादी के रूप में जीवन बिताना बेशक भावनात्मक रूप से संतोषजनक रहा लेकिन यह बहुत कठिन भी रहा। उन्होंने कबूल किया कि इसके लिए सबसे बड़ा त्याग तो पिता के घर की सुख-सुविधाओं से स्वयं को वंचित रखना था। नई पार्टी के संगठन की शुरुआत से ही उनकी जीवन-शैली में आमूल परिवर्तन आ गया था। उससे पहले तक वह वरसोवा बीच वाले घर में अपने माता-पिता के साथ रह रहे थे क्योंकि एक बैरिस्टर के रूप में उनकी इतनी आय नहीं थी कि वह अपना घर अलग से खरीद पाते। ''सन् 1934 की शुरुआत में बांबे सोशलिस्ट ग्रुप के गठन के तुरंत

बाद," उन्होंने लिखा था, "मैंने महसूस किया कि मेरे पिता मेरी गतिविधियों से बहुत नाखुश हैं। उनकी मुख्य आपत्ति मेरे द्वारा वर्ग-संघर्ष को समर्थन देने को लेकर थी क्योंकि वह इसे गैर-जरूरी मानते थे। मेरे पिता पारंपरिक तौर पर उदार-पंथ के पक्षधर थे और उनका यह सोचना शायद ठीक ही था कि हमारी गतिविधियों से सामाजिक सामरस्य तथा शांति भंग होती है। एक मौके पर उन्होंने मुझे साफ-साफ कहा कि उन्हें अपने घर से वर्ग-संघर्ष के लिए प्रोपेगैंडा होते देखना बिल्कुल पसंद नहीं।"

मसानी एक ऐसी नौकरी की तलाश में थे जहां वह बैरिस्टर के रूप में होने वाली कम आय के अलावा कुछ अतिरिक्त कमा सकें और आराम से रह सकें। बंबई के 'जन्मभूमि' समाचारपत्र-समूह ने अंग्रेजी में एक नया दैनिक *द डेली सन* शुरू किया था और मसानी ने यहां 150 रुपये प्रतिमाह पर सहायक संपादक के रूप में रात्रि ड्यूटी पर नौकरी कर ली। यहां की रात्रि ड्यूटी सुविधाजनक थी क्योंकि दिन में वह बांबे हाई कोर्ट में अपनी प्रैक्टिस जारी रख सकते थे और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के संयुक्त सचिव के रूप में अपनी राजनीतिक गतिविधियों को भी निभाते रह सकते थे।

दुर्भाग्यवश *द डेली सन* जल्द ही बंद हो गया और 1934 में अतिरिक्त आय की समस्या फिर से सामने आ खड़ी हुई... इसका समाधान भी "भारतीय राजनीति के एक खास तरीके" से हो गया और वह इस तरह कि उन दिनों धनी लोग राष्ट्रीय महत्व के कामों में लगे लोगों की आर्थिक सहायता कर दिया करते थे। दो प्रसिद्ध वयोवृद्ध सज्जनों ने मसानी को 50-50 रुपये की आर्थिक सहायता प्रतिमाह देनी शुरू कर दी। ये सज्जन थे डा. ए.एस. एरुलकर, चिकित्सक और गांधीवादी पुरुषोत्तम कांजी, जो एक खादी भंडार चलाते थे। इस रकम के अलावा बंबई के ग्रांड होटल में उनके दोपहर के भोजन की व्यवस्था भी हो गई, जिसका बिल उनके पिता देते थे, जो उन दिनों उसी होटल के निदेशक भी थे। इस तरह समाजवादी मसानी राजनीति में बने रहे!

सीएसपी को अपना त्यागपत्र सौंप देने और राजनीति से संन्यास लेने के निर्णय के बाद मसानी की आजीविका की तलाश फिर से शुरू हो गई। "मैं थक गया था," मसानी ने लिखा था, "क्योंकि एक या दो लोगों से

प्राप्त होने वाली स्वल्प उदारता पर बड़ी मुश्किल से मुझे जीवन-निर्वाह करना होता था। इन लोगों का विश्वास था कि मेरा सार्वजनिक जीवन में बने रहना देश के लिए बड़ा लाभप्रद है। लेकिन मैं तो गरिमा तथा आर्थिक स्वतंत्रता की तलाश में था, जो अपनी आजीविका खुद अर्जित करने से ही मिलती है।'' इस बात ने उनके जीवन पर गहरा प्रभाव डाला था और मैं भी इसकी पुष्टि कर सकता हूं। वर्षों बाद, जब वह स्वतंत्र पार्टी के महासचिव थे, तब कोई युवक यदि राजनीति में आने की अपनी इच्छा प्रकट करता तो वह उससे पहला सवाल यह पूछते थे कि आजीविका के लिए वह क्या करता है। यदि उत्तर नकारात्मक होता तो उसे सलाह देते कि 'पहले ठीक-ठाक रोजगार ढूंढ़ लो और फिर मुझे आकर मिलना।' राजनीति के काम में भाग लेने के लिए किसी भी व्यक्ति की राजनीति से भिन्न क्षेत्र में पर्याप्त आय होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में कहें तो वह उन राजनीतिज्ञों को निरुत्साहित करते थे, जो राजनीति को ही इसका जरिया बनाए हुए थे।

अपने बेटे की स्थिति को ध्यान में रखते हुए और टाटा की किसी संस्था में नौकरी दिलवाने की चाह से रुस्तम मसानी ने उनका परिचय ए.डी. श्राफ से करवा दिया, जो उन दिनों टाटा के यहां निदेशक के रूप में कार्यरत थे। यह सन् 1940 की बात है। ''मुझे याद है,'' मसानी ने लिखा है, ''कि जे.आर.डी.टाटा का यह कहना कि औद्योगिक संबंधों तथा श्रम विभाग का मुझे प्रमुख बना देने से कंपनी को कोई खतरा नहीं है, यह बात उन्होंने मेरे समाजवादी विचारों के संदर्भ में ही कही थी।'' सन् 1941 में मसानी को टाटा केमिकल्स के सेक्रेटरी के रूप में नियुक्त किया गया था। शीघ्र ही उन्हें टाटा के जन संपर्क विभाग का प्रमुख बना दिया गया। उन्हें औद्योगिक संपर्क संबंधी सलाहकार का अतिरिक्त दायित्व भी सौंपा गया था।

1954 में मसानी को जन संपर्क से हटाकर चेयरमैन आफिस अर्थात जे.आर.डी.टाटा के आफिस में कार्यकारी सहायक (एग्ज़िक्यूटिव असिस्टेंट) के रूप में स्थानांतरित कर दिया गया। इस पद पर रहते हुए मसानी टाटा के निकट संपर्क में आए। मसानी का एक बड़ा गुण यह था कि वह अपने काम से संबंधित दायित्वों के बारे में बहुत स्पष्ट थे, भले ही ये दायित्व

किसी व्यावसायिक संस्था से जुड़े हों या राजनीतिक पार्टी के किसी पद से। मसानी ने जे.आर.डी.टाटा के कार्यकारी सहायक के रूप में अपने दायित्वों की सूची इस प्रकार निर्धारित की थी :

> चेयरमैन के काम के बोझ को कम करने की कोशिश करना और उन्हें व्यर्थ की दिनचर्या में उलझने से बचाना ताकि वह नीति संबंधी कार्यों को अधिक समय दे सकें;
> उन्हें आगंतुकों तथा आवेदकों की भीड़ से बचाना जैसाकि उनकी तरह के पद वाले व्यक्तियों के साथ अक्सर होता है;
> चेयरमैन को विविध भाषणों तथा संबोधनों के लिए सामग्री जुटाकर देना; जो उन्हें समय-समय पर देने होते हैं।

मसानी ने टाटा के यहां सोलह वर्षों तक काम किया और इससे टाटा संगठन तथा मसानी दोनों को लाभ हुआ। यहां दो क्षेत्रों का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। इनमें से पहला क्षेत्र औद्योगिक संबंधों, खास तौर पर टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी अथवा टिस्को, जमशेदपुर से संबद्ध था। दूसरा क्षेत्र व्यापार के सामाजिक दायित्वों से संबद्ध था (आजकल इसे 'कारपोरेट सोशल रिस्पांसिबिलिटी' कहा जाता है)।

हालांकि मसानी ने समाजवाद संबंधी अधिकांश धारणाओं को तिलांजलि दे दी थी परंतु सामाजिक न्याय की धारणा में उनका अब भी गहरा विश्वास था। वस्तुतः वह अक्सर कहा करते कि सामाजिक न्याय पर समाजवादियों का एकाधिकार नहीं है। वह इस बात पर भी विश्वास करते थे कि स्वैच्छिक संगठन, उदाहरण के लिए श्रमिक संघ (ट्रेड यूनियन), लोकतांत्रिक पद्धति को मजबूत करते हैं। उनका सामूहिक सौदाकारी (क्लेक्टिव बार्गेनिंग) में कट्टर विश्वास था। साथ ही हड़ताल करने के अधिकार को वह बुनियादी स्वतंत्रता मानते थे। स्वतंत्र श्रमिक संघों (राजनीतिक दलों से जिनका संबंध नहीं होता) को वह मुक्त समाज के स्वतंत्र उद्यम का प्रतिपक्ष मानते थे। वह प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी के भी पक्षधर थे। 1955 में इंडस्ट्रियल वेलफेयर सोसाइटी ऑफ लंदन द्वारा निमंत्रित एक अध्ययन-ग्रुप के सदस्य के नाते मसानी पश्चिम जर्मनी तथा यूगोस्लाविया गए ताकि वह जान सकें

कि प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी का प्रयोग संघीय गणराज्य जर्मनी और यूगोस्लाविया में किस तरह काम कर रहा है। वह जर्मनी में इसके व्यावहारिक रूप को देखकर बहुत प्रभावित हुए हालांकि नियोक्ताओं तथा डीजीबी, जर्मन मजदूर संघ, के नेताओं ने उन्हें चेताया था कि इंग्लैंड या भारत में इस प्रयोग का अनुकरण नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि "जर्मन श्रमिकों जैसा अनुशासन तथा कड़ी मेहनत की क्षमता और जगहों पर पा लेना आसान नहीं होगा।"

यूगोस्लाविया का मॉडल मसानी को गांधीवादी प्रकृति का लगा, जबकि उस देश में कम्युनिस्टों का शासन था। उनकी यूगोस्लाव कम्युनिस्टों से लंबी बातचीत हुई और उन्हें कुछ बातों के लिए हैरानी भी हुई। उन्हीं के शब्दों में कहें : "यूगोस्लाव कम्युनिस्ट सोवियत पद्धति के राष्ट्रीयकरण तथा राज्य के स्वामित्व को अस्वीकार करते हुए इसे प्रतिक्रियावादी राज्य- पूंजीवाद मानते थे और इसका मार्क्सवाद अथवा साम्यवाद से कोई संबंध नहीं देखते थे। उनकी दृष्टि में यहां श्रमिकों का पूर्ण नियंत्रण था यानी एक प्लांट को चलाने वाले मैनेजर से लेकर अकुशल मजदूर तक सभी का।" इसी के साथ उन्होंने इस महत्वपूर्ण तथ्य पर भी गौर किया कि यह प्रयोग राष्ट्रपति टीटो की सत्ता तथा प्रभुत्व के कारण सफल हुआ है और किसी अन्य मुक्त समाज में यह सहजता से संचलित नहीं किया जा सकता था। इसके बावजूद मसानी ने श्रमिकों के नियंत्रण को, भले ही यह उतना प्रामाणिक नहीं रहा हो, आगे की तरफ और सही दिशा में जाने वाला कदम माना। "जब मेरे यूगोस्लाव कम्युनिस्ट मित्रों ने मार्किट के कानूनों तथा प्लांट अथवा फैक्टरी के स्वामियों द्वारा ट्रस्टीशिप अपनाने की चर्चा की, तब मैंने उन्हें बताया कि उनकी यह बात सुनकर मुझे एक तरफ तो एडम स्मिथ और दूसरी तरफ 1934 में उड़ीसा की पदयात्रा के दौरान गांधी जी द्वारा दी गई सलाह दोनों एक साथ याद आ रहे हैं।"

इन दोनों देशों में मसानी ने जो कुछ निरीक्षण किया, वह उससे गहरे तक प्रभावित हुए थे। उन्होंने टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी, जमशेदपुर में जे.आर.डी.टाटा के सहयोग से श्रमिकों को प्रबंधन से जोड़ने के विचार को लागू करने का फैसला किया। 1956 में टिस्को के प्रबंधकों तथा टाटा

वर्कर्स यूनियन द्वारा एक समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। "इस समझौते के अंतर्गत संयुक्त मशवरे तथा साझेदारी के उन उपायों को और अधिक बढ़ाना और व्यापक बनाना था, जो पहले से ही मौजूद थे। इसके लिए एक त्रि-स्तरीय ढांचा तैयार किया गया—सबसे निचले स्तर पर विभागीय समितियां; फिर संयुक्त कर्मशाला परिषद एवं संयुक्त नगर परिषद इसके अगले स्तर के रूप में; और संयुक्त प्रबंधन परिषद सर्वोच्च स्तर के रूप में।" मसानी ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि यह योजना खूब अच्छी तरह निभाई जा सकी थी और इसके फलस्वरूप न केवल सामरस्यपूर्ण संबंध विकसित हुए बल्कि सांप्रदायिक दंगों के समय इसके कारण कानून तथा व्यवस्था तक को बहाल किया जा सका था और टाटा के कर्मचारी सांप्रदायिक दुष्प्रभावों से बचे रह सके थे।

दूसरी अवधारणा, जिसके लिए मसानी का मानना था कि उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान दिया है, व्यवसाय में सामाजिक दायित्व संबंधी क्षेत्र की थी। इस काम में उन्होंने जयप्रकाश नारायण और जे.आर.डी.टाटा का भरपूर सहयोग भी लिया था। यद्यपि यह अवधारणा दस वर्ष बाद 'व्यवसाय के सामाजिक दायित्वों संबंधी घोषणा' के रूप में फलीभूत हुई थी, लेकिन इसका उद्गम 1950 के दशक के आरंभ में विनोबा भावे द्वारा आरंभ किए गए भूदान आंदोलन (भूमिहीनों को भूमि का दान) में देखा जा सकता है। जयप्रकाश नारायण का विनोबा भावे को सक्रिय सहयोग प्राप्त था और उनके द्वारा संस्थापित संगठन (अखिल भारतीय सर्व सेवा संघ) ने इस आंदोलन को विस्तृत ही किया था क्योंकि इस संगठन की वजह से संपत्तिदान की अवधारणा भी उक्त आंदोलन का हिस्सा बन गई थी। "इसके पीछे विचार यह था कि जिन लोगों को भूदान के रूप में जमीन वितरित की जाती है, उनके पास पूंजी नहीं होती, अतः जिन लोगों के पास बेशी संपत्ति अथवा आय है, उन्हें अपने स्रोतों का एक अंश दान के रूप में देना चाहिए ताकि अखिल भारतीय सर्व सेवा संघ द्वारा, भूदान से लाभान्वित लोगों को, शुरुआत करने के लिए हल, बैलों की जोड़ी अथवा बीज दिए जा सकें।"

खुद भी संपत्तिदानी बनकर और अपनी कुल आय का दसवां हिस्सा दान के रूप में देने की स्वीकृति देकर मसानी ने जेपी को इस तरह अपना

समर्थन दिया था। उन्होंने इस व्यवस्था को आगामी बीस वर्षों तक निभाया। जेपी के साथ मिलकर मसानी ने धनी-मानी लोगों को दान देने के लिए राजी किया। फलस्वरूप जे.आर.डी.टाटा इस बात के लिए राजी हो गए कि आगामी पांच वर्षों तक, आयकर चुकाने के बाद, वह अपनी कुल आय का छठा हिस्सा हर वर्ष इस प्रयोजन के लिए देंगे। मिल मालिक धर्मसे खटाऊ ने अपने वार्षिक खर्च का छठा हिस्सा संपत्तिदान के रूप में देने का निर्णय लिया। एक और मिल मालिक अरविंद मफतलाल ने भी संपत्तिदान करने का निर्णय लिया।

इसके दस वर्ष बाद, मार्च 1965 में जेपी की पहल को ध्यान में रखते हुए मसानी ने दिल्ली के इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में 'व्यापार का सामाजिक दायित्व' विषय पर एक अंतर्राष्ट्रीय सेमीनार का आयोजन किया था। यद्यपि सेमीनार में भाग लेने वाले व्यावसायिक और विचारधारा के स्तर पर विभिन्न पृष्ठभूमि के लोग थे, फिर भी, वे 'व्यापार के सामाजिक दायित्व संबंधी घोषणा-पत्र' के लिए एकमत थे। इस घोषणा-पत्र से क्या संकेत मिलता था? इसका संकेत यह था, "जब तक व्यापारियों के लिए ऐसी स्थितियां निर्मित नहीं की जातीं कि वह आजादी से सांस ले सकें, उनसे दूरगामी प्रभाव वाले सामाजिक दायित्व की अपेक्षा करना व्यावहारिक नहीं होगा।"

इस मूल बात को केंद्र में रखते हुए घोषणा-पत्र में शेयरधारकों, श्रमिकों, उपभोक्ताओं और अंततः समुदाय के प्रति विभिन्न दायित्वों की व्याख्या की गई थी। इसके अंत में प्रबंधन के महत्व तथा शिक्षा व सामाजिक परिवर्तन में उसकी भूमिका को रेखांकित किया गया था।

यद्यपि मसानी अब स्वयं एक बिजनेस एग्ज़िक्यूटिव थे, फिर भी, राजनीति उनसे कहीं दूर नहीं गई थी। भारत छोड़ो आंदोलन की शुरुआत बंबई में 8 अगस्त, 1942 को हुई थी। 9 अगस्त को ही कांग्रेस कार्यकारी समिति के सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया गया था। मसानी उन दिनों टाटा एअरक्रॉफ्ट लिमिटेड के सेक्रेटरी थे। भारत छोड़ो आंदोलन में सीधे भाग लेकर वह अपने मालिकों को शर्मिंदा नहीं करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने भूमिगत गतिविधियों को गुपचुप रूप से समर्थन देने का फैसला किया। उन्होंने अच्युत पटवर्धन द्वारा संपादित पाक्षिक पत्र *नाइन्थ ऑगस्ट,* जो अवैध करार

दिया हुआ था, के लिए 'सेंसर्ड न्यूज़ एंड अनसेंसर्ड व्यूज़' स्तंभ लिखकर इस आंदोलन की सहायता करने की सोची। 9 फरवरी, 1943 को गांधी जी ने जब ब्रिटिश सरकार की दमनकारी और अत्याचारी कार्रवाई के विरोध में, पुणे के आगा खां के बंगले पर, 21 दिनों का उपवास रखने का फैसला किया, तब बेचैन मसानी अपने को जब्त नहीं कर सके। उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया और खुद की गिरफ्तारी दी। हां, पुणे जाने से पहले उन्होंने जे.आर.डी.टाटा से मिलकर अपने निर्णय से उन्हें अवगत जरूर करा दिया था। जे.आर.डी.टाटा ने मसानी को सिर्फ इतनी बात कही कि रिहाई के बाद वह मुझ से जरूर मिलें। कुछ महीनों बाद रिहा होकर मसानी ने यही किया और टाटा के यहां दोबारा नौकरी कर ली। उन्होंने टाटा समूह की कंपनियों में कुल 16 वर्षों तक एक एग्ज़िक्यूटिव के रूप में काम किया और इसमें दो विराम भी शामिल हैं। इनमें से एक विराम तब हुआ, जब उन्हें भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लेने के फलस्वरूप कुछ महीनों तक जेल में रहना पड़ा और दूसरा विराम तब हुआ, जब वह 16 महीनों तक ब्राजील में भारत के राजदूत रहे थे।

उन्होंने 1956 में टाटा के यहां से अंतिम विदाई तब ली, जब उन्होंने एक निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में रांची निर्वाचन क्षेत्र से लोकसभा के चुनाव में खड़े होने का फैसला किया। इस चुनाव में वह विजयी घोषित हुए थे।

मसानी ने 1958 में निजी मैनेजमेंट कंसल्टेंसी फर्म शुरू की। इस फर्म से उन्हें बहुत अच्छी आमदनी होती थी, अतः उन्हें राजनीति को आजीविका का साधन बनाने की जरूरत नहीं थी।

8

संसद के कांग्रेसी सदस्य के रूप में

सन् 1945-51 की अवधि में, अर्थात भारत की स्वतंत्रता के पूर्व-काल में, दिल्ली की संसद के तीन अलग-अलग नाम थे और यह संसद तीन विभिन्न कार्य करती थी : भारतीय विधान सभा, अस्थायी अंतःकालीन संसद और संविधान सभा (भारतीय विधान सभा का विस्तारित संस्करण)। एक ही संसद के इन तीन अवतारों ने 1952 में भारत में संसदीय लोकतंत्र की नींव रखी और भारतीय गणतंत्र के आम चुनाव के माध्यम से वयस्क मताधिकार द्वारा लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचित पहली लोक सभा स्थापित की थी।

1945 में द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद ब्रिटिश सरकार ने दिल्ली में भारतीय विधान सभा के नए चुनावों की घोषणा की। इन चुनावों की निर्वाचक सूची में केवल टैक्स देने वालों के नाम ही शामिल थे, अतः इस सूची में शिक्षित मध्यम वर्ग के मतदाता ही थे। विधान सभा के कुल 140 सदस्य होने वाले थे। इनमें से सौ सदस्यों को चुनाव द्वारा चुना जाना था और चालीस सदस्य वाइसराय द्वारा नामांकित किए जाने थे। इन चालीस में से छब्बीस सरकारी तथा चौदह गैर-सरकारी सदस्य नामांकित किए जाने थे।

सरदार पटेल ने विधान सभा के लिए बंबई से मसानी को कांग्रेसी प्रत्याशी के रूप में नामांकित किया। वह यह चुनाव आसानी से जीत गए और इस प्रकार 1945 में मसानी के संसदीय जीवन की शुरुआत हो गई।

1946 के अंत में, भारतीय विधान सभा को, संविधान सभा* के रूप में बदल दिया गया और इसे भारत के संविधान का प्रारूप तैयार करने का दायित्व सौंपा गया। इस काम के अलावा 1947 से 1952 के दौरान संविधान सभा ने अंतःकालीन संसद की भूमिका भी निभाई।

भारतीय विधान सभा के सदस्य के रूप में मसानी का विधान सभा में पहला भाषण 1945 में दस मिनट का था और इसमें जयप्रकाश नारायण और राममनोहर लोहिया को, जो उन दिनों आगरा जेल में बंद थे, रिहा करने पर विशेष बल दिया गया था। वाइसराय की काउंसिल के होम मेंबर, सर जॉन थार्न इस कदर प्रभावित हुए कि भाषण के तुरंत बाद उन्होंने जेपी और लोहिया से उन्हें जेल में मिलवाने की पेशकश कर दी। मसानी ने इसे स्वीकार करते हुए यह शर्त रखी कि मुलाकात के समय वहां कोई अधिकारी नहीं होना चाहिए। थार्न ने उनकी शर्त मानते हुए अपनी भी एक प्रति-शर्त रखी कि मसानी मुलाकात के बाद उन्हें जेपी तथा लोहिया की "मानसिक स्थिति और वह अब कैसा महसूस कर रहे हैं," इस बारे में पूरी सूचना देंगे। मसानी को इस शर्त में बुराई नजर नहीं आई और वह राजी हो गए। वह आगरा जेल में जेपी तथा लोहिया से मिले और उन्हें "यथोचित रूप से स्फूर्तिवान और प्रसन्न" पाया।

तत्पश्चात जेपी के पत्र से मसानी को पता चला कि थार्न पहले ही उनसे मिल चुका है और एक बार फिर मिलने वाला है ताकि उनकी रिहाई के बारे में कोई फैसला लिया जा सके। जेपी का मसानी को पत्र कुछ और भी कहता लग रहा था—विधान सभा में उनके भाषणों की प्रशंसा के बारे में। जेपी ने लिखा था :

> ...हां, मैंने आपके पहले भाषण की रिपोर्ट *टाइम्स* (हमें यह अखबार रोज मिलता है और पसंद भी आता है। मेरे विचार से भारत में यह अंग्रेजी का श्रेष्ठ अखबार है) में पढ़ी थी और अन्य भाषणों की रिपोर्ट भी। इन रिपोर्टों तथा उन पर लिखी प्रेस टिप्पणियों के आधार पर

---

* संविधान सभा का गठन भारतीय विधान सभा से सदस्यों में से किया गया था। इसके सदस्य राज्य विधान सभाओं तथा भारतीय रियासतों से समानुपाती प्रतिनिधित्व के आधार पर निर्वाचित किए जाते थे।

मैं कहना चाहता हूं कि असेंबली में कांग्रेस पार्टी के काम के प्रति एम. आर.मसानी के संभावित योगदान के बारे में आपका निजी अनुमान सही नहीं है। अन्य बातों के साथ इससे यही पता चलता है कि मैं हमेशा गलत नहीं था और न ही आप हमेशा सही थे!

अपने पहले भाषण के संदर्भ में क्या आप इसे सही मानते हैं कि जो लोग इतने भले हैं कि मक्खियां तक नहीं मार सकते, वे ही स्वतंत्र रह सकते हैं? बेशक यह सर्वविदित तथ्य है कि 1942 में साम्राज्य अचानक अहिंसक बन गया था लेकिन एक दूसरी बात उतनी सर्वविदित नहीं है कि उसके बाद से सभ्य व्यवहार यह मान लिया गया है कि केवल उन्हें ही स्वतंत्रता दी जा सकती है जो अहिंसा में विश्वास करते हैं।*

हमें यह याद रखना चाहिए कि भारतीय विधान सभा में, 1946—मध्य में अंतरिम सरकार बन जाने तक, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने विपक्ष की पार्टी की भूमिका निभाई थी। 1945 के शाही नौसेना विद्रोह की कुछ ही लोगों को याद होगी। इस विषय से संबंधित कांग्रेस पार्टी के स्थगन-प्रस्ताव पर बोलते हुए मसानी ने कहा था कि यह विद्रोह ब्रिटिश सरकार की अपनी ही सेनाओं पर नियंत्रण न रख पाने की असमर्थता को दर्शाता है। इस तरह बात कहना मसानी की खास अदा थी। उन्होंने इस मौके पर वाइसराय द्वारा नामांकित प्रतिनिधि को नीचा दिखाने की कोशिश नहीं की थी। हालांकि वह सत्तापक्ष का ही सदस्य था। उन्होंने विद्रोहियों का साथ देने के बजाए सरकार पर विद्रोह को न कुचल पाने का दोष मढ़ दिया। असेंबली में बोलते हुए उन्होंने ब्रिटिश सत्ता से अपील की कि 'देश में सेना, नौसेना और वायुसेवा के रहते हुए भी' वह इस देश को छोड़ दे। उन्होंने याद दिलाया कि स्थिति

---

* विधान सभा में दिए गए मसानी के भाषण पर मिलने वाली प्रशंसा से मुझे स्वराज्य पत्रिका में राजा जी द्वारा अपने स्तंभ में मसानी की कभी-कभी की गई सार्वजनिक प्रशंसा की याद आ रही है। इसके अलावा लोक सभा में मसानी के महत्वपूर्ण भाषणों की राजा जी ने अपने पत्रों में भी प्रशंसा की है। मुझे ये पत्र पढ़ने का सौभाग्य तब मिला (राजा जी अक्सर उन्हें अपने हाथ से लिखे पोस्टकार्ड भेजा करते थे), जब मैं मसानी के साथ स्वतंत्र पार्टी के केंद्रीय कार्यालय में काम करने लगा।

पर नियंत्रण पाया जा चुका है और सरकार की प्रतिष्ठा बंबई में सरदार पटेल और कराची में गजधर के सहयोग से ही सुरक्षित रह पाई है। यह सुरक्षित इसलिए रह पाई क्योंकि हमारी सभी पार्टियों के नेता, देश के हित में, अधिकारियों के आह्वान को समर्थन देने के लिए तैयार थे। ब्रिटिश सरकार के रक्षा सचिव फिलिप मेसन, जो मैन हू रूल्ड इंडिया पुस्तक के लेखक भी हैं और जिसे विद्वान लोग इंडियन सिविल सर्विस का गौरव-ग्रंथ मानते हैं, ने मसानी की प्रशंसा करते हुए कहा–"मसानी, यह भाषण अत्यंत शरारतभरा था, इसके बावजूद मुझे बहुत पसंद आया था।"

मसानी असेंबली में विपक्ष के प्रवक्ता के रूप में अत्यंत सफल रहे थे। जेपी से हुई अपनी एक बातचीत में जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि असेंबली में मसानी के अलावा वह कांग्रेस पार्टी के किसी भी अन्य सदस्य के काम से खुश नहीं थे। विधान सभा में कांग्रेस के विपक्ष के सदस्य के रूप में मसानी की भूमिका का अंत तब हुआ, जब 1946 के मध्य में अंतरिम सरकार बन गई जिसमें नेहरू मुख्यमंत्री और लियाकत अली खां (मुस्लिम लीग) उप-मुख्यमंत्री व वित्त मंत्री नियुक्त किए गए थे। मसानी अब सत्ता पक्ष के सदस्य हो गए थे क्योंकि उनकी पार्टी अर्थात कांग्रेस पार्टी मुस्लिम लीग के साथ मिली-जुली सरकार में शामिल थी।

वित्त मंत्री लियाकत अली ने 28 फरवरी, 1947 को अपना बजट पेश किया। मसानी ने इस बजट को "त्रुटिपूर्ण बजट कहा जिसका उद्देश्य विभाजन से पहले भारतीय उद्योग को लात मारना था।" मसानी को इस बात का अंदाजा नहीं था कि आगामी चार दशकों तक वह स्वतंत्र भारत में इस "लात मारने" के प्रभाव को महसूस करते रहेंगे। पहली बार मसानी को लगा कि वह नेहरू से तालमेल नहीं बिठा पा रहे हैं क्योंकि नेहरू ने लियाकत अली खां के बजट का समर्थन किया था। कुछ अन्य कांग्रेसी सदस्यों के साथ मिलकर मसानी ने कर संबंधी प्रस्तावों (पूंजीगत अभिलाभ कर–कैपिटल गेंज़ टैक्स और अति लाभ कर–एक्सैस प्रॉफिट्स टैक्स) को कम कठोर बनवाने की कोशिश जरूर की थी। कांग्रेसी होने के कारण ये लोग इस प्रस्ताव का विरोध तो नहीं कर सकते थे लेकिन ये प्रस्ताव को संसद की प्रवर समिति के पास भिजवाने में जरूर सफल रहे। सरदार पटेल की जानकारी

के साथ मसानी तथा एक अन्य सहयोगी कांग्रेसी के.सी.नियोगी ने कार्यवृत्त में अपना प्रतिरोध दर्ज करवाया। सरदार पटेल, मसानी ने लिखा है, "इससे बेहद खफ़ा थे। यथार्थवादी होने के नाते वह इस बात को देख पा रहे थे कि इस प्रस्ताव से कितना अधिक नुकसान होगा।" प्रवर समिति की रिपोर्ट में कराधान संबंधी प्रस्तावों में कुछ सुधार जरूर हो गया था।

मसानी के अलावा अन्य अनेक कांग्रेसी सदस्यों के माध्यम से भी, लियाकत अली के बजट को लेकर सरदार पटेल तथा नेहरू के एक-दूसरे से विरोधी विचार, पहली बार सार्वजनिक रूप से उजागर हो गए। तब से लेकर सरदार पटेल की मृत्यु तक, इन दोनों में, अक्सर नोंक-झोंक हो जाती थी क्योंकि अनेक विषयों पर उनके विचार मेल नहीं खाते थे। खुद मसानी के लिए भी, नेहरू के साथ हुई अनेक झड़पों में, यह उनकी पहली झड़प थी। उन्होंने लिखा है—"मुझ में और नेहरू में मतभेद तब शुरू हुआ, जब वह सरकार के नेता और मैं, कांग्रेस की तरफ की बीच की बैंच पर बैठने वाला कांग्रेसी सदस्य था। संसदीय जीवन का जोश उन दिनों मुझे क्षीण होता महसूस होता। मेरी खुशी तब लौटी, जब 1957 में मैं दोबारा विपक्ष में आ गया था।" चाहे जो भी स्थितियां रही हों, एक संसद सदस्य के रूप में मसानी का कौशल, भारतीय विधान सभा के सदस्य के रूप में ही, सान पर चढ़ता दिखाई देता है।

भारत की स्वतंत्रता से पहले ही, भारतीय विधान सभा का रूपांतरण, संविधान सभा एवं अंतःकालीन संसद में हो गया था। संविधान सभा की पहली बैठक 9 दिसंबर, 1946 को हुई थी जिसमें डॉ. राजेंद्र प्रसाद को एकमत से अध्यक्ष चुना गया था। इसने भारतीय संविधान का प्रारूप बनाने का अपना काम 24 जनवरी, 1950 को पूरा कर लिया था। भारतीय गणतंत्र के पहले राष्ट्रपति के रूप में सर्वसम्मति से डॉ. राजेंद्र प्रसाद को निर्वाचित किया गया था।

पहले 38 महीनों के दौरान मसानी ब्राजील में भारत के राजदूत नियुक्त किए गए थे, लेकिन 16 महीनों के बाद ही वह लौट आए और फिर से संविधान सभा के सदस्य बना दिए गए। ऐसा क्योंकर हुआ, राजदूत का पद संभालने से पहले इस बारे में उन्होंने सरदार पटेल से सलाह-मशविरा

किया था और पटेल ने मसानी को आश्वस्त किया था कि ब्राजील से लौटने पर वह उनके लिए एक उप-चुनाव की व्यवस्था कर देंगे ताकि मसानी अपनी सीट वापिस पा सकें।

भारत के संविधान के निर्माण में मसानी की भूमिका क्या रही? भारत को स्वतंत्रता मिलने के शुरुआती दिनों में ही मसानी 'समाजवादी' से 'उदार गांधीवादी' में बदल गए थे। संविधान सभा में हुई बहसों में उन्होंने जो पक्ष लिया, यह बात उससे सहज समझी जा सकती है। यहां उन्होंने एक ईमानदार मतविरोधी की भूमिका निभाते हुए अर्थवान जनतंत्र के लिए आवश्यक मूल्यों को अपना समर्थन दिया था। वह संविधान सभा की सलाहकार समिति के सदस्य थे और इसके साथ-साथ मूलभूत अधिकारों की एक उप-समिति के भी सदस्य थे। मसानी ने लिखा है, "संविधान सभा की संपूर्ण अवधि तक सलाहकार समिति में मानो एक युद्ध लड़ा जा रहा था जिसमें एक तरफ मेरे जैसे लोग थे, जो व्यक्ति-स्वतंत्रता के पक्षधर थे और दूसरी तरफ ऐसे लोग थे जो राज्य को वरीयता देते थे। ऐसा एक 'युद्ध' समान नागरिक संहिता को लेकर लड़ा गया था। मसानी ने एक प्रस्ताव द्वारा संविधान में मूलभूत अधिकारों से संबंधित अध्याय में यह धारा जोड़ने का आग्रह किया था कि समान नागरिक संहिता स्थापित करना राज्य का उत्तरदायित्व होगा। राजकुमारी अमृत कौर, हंसा मेहता और डॉ. आंबेडकर ने मसानी का समर्थन किया था पर बहुसंख्यक सदस्य इसके खिलाफ थे। समान नागरिक संहिता समर्थकों को कार्यवृत्त में अपने विमत को दर्ज कर ही संतुष्ट होना पड़ा था, जो इस प्रकार था : "भारत को राष्ट्रत्व की ओर अग्रसर होने से रोकने का एक कारण धर्म के आधार पर स्थापित 'पर्सनल लॉ' का होना है क्योंकि इससे राष्ट्र का जीवन अनेक तरह से पृथक्-पृथक् खंडों में बंट जाता है। हम लोगों की यह राय है कि पांच से दस वर्षों के भीतर भारत के सभी लोगों को समान नागरिक संहिता का लाभ मिलना चाहिए।"

एक और धारा थी, जो मसानी पारित करवाना चाहते थे लेकिन चार के मुकाबले पांच मतों से हार गए : "यदि कोई नागरिक दो भिन्न धर्मों के हैं तो उनकी शादी में धर्म के आधार पर विघ्न नहीं पड़ने देना चाहिए।"

इसके पक्ष में पड़ने वाले चार मतों में मसानी के अलावा दो महिला सदस्यों तथा डॉ. आंबेडकर के मत थे।

समानुपातिक प्रतिनिधित्व मसानी का एक प्रिय विषय था। उन्होंने इस विषय पर गहन विचार किया था, अतः यह बात स्वाभाविक ही थी कि वह भारत के संविधान में इसे शामिल करवाने का भरपूर प्रयत्न करते। अतएव अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व के अधिकार को जब सुरक्षा प्रदान करने का प्रश्न उठा, भले ही यह प्रतिनिधित्व राजनीतिक, संजातीय अथवा धार्मिक क्षेत्र से संबंधित हो, और जब के.एम.मुंशी ने यह प्रस्ताव रखा कि 'सामान्य सिद्धांत के अंतर्गत विभिन्न मान्यता प्राप्त अल्पसंख्यक समूहों को विविध विधायिकाओं में सीटों का आरक्षण मिलना चाहिए', तब मसानी ने यह तर्क देते हुए एक संशोधन रखा कि वयस्क मताधिकार पर आधारित पद्धति में हरिजनों अथवा अन्य किसी अल्पसंख्यक समूह के लिए सीटों के आरक्षण की जरूरत नहीं होगी, यदि मतदान समानुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धांत से होता है। इसका समर्थन डॉ. आंबेडकर ने किया जो हरिजनों के पक्षधर थे और साथ ही एंग्लो-इंडियन और ईसाई समुदायों के प्रवक्ताओं तथा मुस्लिम लीग के सदस्यों ने भी इस संशोधन का समर्थन किया। ये सभी समुदाय आरक्षण पर जोर न देने पर राजी हो गए, यदि मतदान समानुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति से करवाया जाता है।

सरदार पटेल ने, जो उस समय समिति की अध्यक्षता कर रहे थे, मसानी के संशोधन का इस आधार पर विरोध किया कि संशोधन को मान लेने से फ्रांस की तरह, यहां भी, गठबंधनों में बदलाव व अस्थिरता आ जाएगी। सरदार चाहते थे कि यहां द्विदल-पद्धति लागू हो जाए और निश्चायक बहुमत के आधार पर एक सुदृढ़ सरकार बन सके। उन्हें इस बात का डर था कि समानुपातिक प्रतिनिधित्व को स्वीकृति देने पर बहुत बड़ी संख्या में छोटी पार्टियां अस्तित्व में आ जाएंगी। मसानी समिति को यह बात समझाने में विफल रहे कि पार्टियों की अधिक संख्या का होना चुनाव पद्धति पर नहीं बल्कि ''राष्ट्रीय स्वभाव'' पर निर्भर करता है। उनका तर्क था कि भारतीय लोग अंग्रेजों की तरह नहीं हैं, जिनकी प्रवृत्ति समझौता करने की है। भारत के लोगों का स्वभाव लैटिन लोगों के अधिक करीब है—फ्रेंच, इटैलियन और

लैटिन-अमेरिकन—"जिनमें तोड़फोड़ तथा बिखराव की तरफ झुकाव रहता है।" अंततः आरक्षण की जीत हुई और समानुपातिक प्रतिनिधित्व की हार हुई।"*

मसानी ने बहुत दुख जताते हुए लिखा है, "हरिजनों के लिए आरक्षण को स्वीकार कर लेने के बाद भारत उस समस्या से आज भी ग्रस्त है क्योंकि बेईमान तथा भ्रष्ट नेताओं द्वारा उनका शोषण जारी है और इन नेताओं ने ऐसे लोगों का इस्तेमाल स्वयं को केंद्र तथा राज्य सरकारों में प्रवेश पाने भर के लिए किया है। यह हमारे राष्ट्रीय जीवन में भ्रष्टाचार फैलाने का भी एक बड़ा कारण बन चुका है। क्योंकि विधानमंडलों में अनुसूचित जाति के अनेक सदस्यों के वोटों की खरीद-फरोख्त का काम भी चलता रहता है।" मसानी को तब एक तरह की सफलता जरूर मिली, जब उन्होंने तथा सर होमी मोदी, जो तब संविधान सभा के सदस्य थे, ने मिलकर पारसियों के लिए सीटों के आरक्षण की मांग को रद्द करवा दिया था।

संविधान सभा में जब केंद्र तथा राज्यों के लिए विषयों के निर्धारण पर बहस शुरू हुई तो मसानी का सुझाव था कि योजना को राज्यों की सूची में रखा जाना चाहिए। उनके इस सुझाव को आंशिक स्वीकृति ही मिली क्योंकि इसे समवर्ती सूची में रखा गया।

गणतंत्रीय भारत द्वारा उपाधि वितरित करने के औचित्य को लेकर मसानी के सुस्पष्ट तथा दृढ़ विचार थे। वह उपाधि वितरण की प्रथा को ही समाप्त करवाना चाहते थे। "किसी व्यक्ति द्वारा सेवाएं प्रदान करने के फलस्वरूप प्राप्त सम्मान को अपने नाम के आगे अथवा बाद में लगाना स्वतंत्र भारत में शोभा नहीं देता।" उनका तर्क था कि इससे "न केवल अधीन देशों बल्कि तथाकथित स्वतंत्र देशों में भी उपाधियां—न केवल प्रदान करने वाले व्यक्तियों अपितु प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के लिए भी—खतरनाक तथा

---

* आजकल, 'बहुमत के आधार पर जीत' के सिद्धांत के बावजूद, पार्टियों में बिखराव इस कदर बढ़ चुका है कि भारत के चुनाव आयोग के अनुसार देश में फिलहाल 63 पंजीकृत और 718 अ-पंजीकृत राजनीतिक पार्टियां विद्यमान हैं। इसके अलावा केंद्र तथा राज्यों में दोनों जगह गठबंधन की सरकारें बनने लगी हैं जिससे निर्वाचन-पद्धति में विसंगतियां आ गई हैं। आरक्षण की पद्धति ने भी हर गतिविधि में अपना जाल इस कदर फैला लिया है कि हर समय कोई-न-कोई जाति/धर्म/संजातीय समूह खुद को आरक्षित वर्ग में रखवाने के लिए निरंतर हंगामा करता रहता है।

भ्रष्टाचार का स्रोत साबित होती हैं।'' अतएव इस विषय पर प्रस्तुत सरकारी प्रस्ताव में अन्य बातों के साथ-साथ यह वाक्य भी शामिल था : ''संघ द्वारा प्रदान की जाने वाली उपाधि में सेवा अथवा व्यवसाय के अतिरिक्त किसी अन्य बात का उल्लेख नहीं होना चाहिए।'' मसानी ने संशोधन प्रस्तुत कर प्रस्ताव में ''सेवा अथवा व्यवसाय के अतिरिक्त'' शब्दों को हटाने के लिए कहा। लेकिन संशोधित प्रस्ताव का जो स्वरूप प्रस्तुत हुआ, वह था : ''संघ द्वारा कोई उपाधि नहीं दी जानी चाहिए।'' मसानी के संशोधन पर मतदान हुआ और प्रस्ताव गिर गया।

संविधान सभा ने जब अपना काम पूरा कर लिया, तब अंतःकालीन संसद 1952 के पहले आम चुनाव तक जारी रही और मसानी इसके सदस्य बने रहे।

हम मसानी तथा नेहरू के बीच पड़ने वाली दरार का उल्लेख पहले ही कर आए हैं। आखिर यह दरार पड़ी क्यों? मसानी अपने समाजवादी दौर में नेहरू को पूजा-भाव से देखते थे : रूस में बोल्शेविक क्रांति के प्रति दोनों का उत्साह, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के लिए नेहरू का अति उत्साहपूर्ण रवैया और कई मौकों पर यह अफसोस कि नेहरू उतने समाजवादी क्यों नहीं हैं जितना उन्हें होना चाहिए! लेकिन आगे चलकर सोवियत संघ द्वारा अपनाई गई नीतियों, कम्युनिस्टों तथा साम्यवाद से उनका मोहभंग हो गया था और वह जिस तरह कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के अपने कामरेडों को साम्यवाद की प्रकृति तथा उसकी विघटनकारी भूमिका के बारे में समझाने में असमर्थ रहे थे, उसी तरह वह नेहरू को भी इस बात के लिए समझा नहीं सके।

नेहरू, मसानी की यह बात, मानने के लिए तैयार नहीं थे कि सोवियत संघ या फिर स्तालिन इतने खराब हो सकते हैं। यथार्थ को अस्वीकार कर देने या फिर यथार्थ को अनदेखा कर देने का सीधा संबंध नेहरू की आर्थिक तथा विदेश नीतियों से था। मसानी के संस्मरणों में एक ऐसे किस्से का उल्लेख है जो नेहरू से उनकी असहमतियों का खुलासा करता है और साथ ही इस बात की सूचना भी देता है कि मसानी को खाद्य मंत्री बनाने की संभावना क्यों कार्यरूप नहीं ले सकी :

अंतःकालीन संसद के दौरान एक बार बातों-बातों में जॉन मथाई ने मुझसे कहा कि नए कैबिनेट में मुझे खाद्य मंत्री बनाने की बात सुनने में आ रही है। *द स्टेट्समैन* में इस बारे में संकेत किया जा चुका था। उन्होंने यह भी कहा कि नेहरू इस पर गंभीरता से विचार कर रहे हैं। तब उन्होंने मुझसे एक सवाल किया : 'यदि आप केबिनेट में ले लिए जाते हैं, तब आप किसे समर्थन देंगे—नेहरू या पटेल को?' मुझे तुरंत अहसास हुआ कि मेरे उत्तर, जिसे मथाई निस्संदेह नेहरू को बताएंगे, पर यह निर्भर करता है कि मुझे खाद्य मंत्री बनाया जाएगा अथवा नहीं। मैंने साफगोई से उत्तर देने का फैसला किया, चाहे इसका परिणाम जो भी हो। मेरा उत्तर था कि एक व्यक्ति के बरक्स दूसरे व्यक्ति के समर्थन का सवाल ही नहीं उठता। मेरी दृष्टि में प्रश्न यह बनता है—विभिन्न विषयों पर मेरी राय के अनुसार कौन वोट करेगा? मुझे कोई संदेह नहीं कि अल्पसंख्यकों तथा राज्य के असांप्रदायिक चरित्र को लेकर तथा आधुनिकीकरण के मामले में नेहरू तथा मेरा स्वर समान होगा, जबकि विदेश नीति तथा साम्यवाद के मामले में सरदार पटेल और मेरी राय समान होगी। मुझे विश्वास है कि मेरे इस उत्तर से ही मुझे खाद्य मंत्री नहीं बनाया गया। मुझसे इस बारे में कभी कुछ नहीं पूछा गया।

जून 1950 में छिड़ने वाले कोरियाई युद्ध के प्रति भारतीय रुख; सोवियत संघ की विस्तारवादी कार्रवाई, निकट तथा सुदूर पूर्व के संदर्भ में; 1950 में चीन द्वारा तिब्बत पर हमला जिसे अक्सर तिब्बत के प्रति भारत का विश्वासघात कहा जाता है—ऐसे विषयों के प्रति मसानी तथा नेहरू के दृष्टिकोण ने उनके बीच के मतभेद को और भी उजागर कर दिया था। नेहरू तथा मसानी के बीच हुई झड़पों से संसदीय बहसों के विकास का रोचक इतिहास भी जाना जा सकता है, जबकि इधर इसके स्तर में शोचनीय ह्रास हुआ है। दोनों की ही मूलभूत समझ शीत युद्ध के संदर्भों से प्रभावित थी। यद्यपि नेहरू सोवियत गुट के दृष्टिकोण का समर्थन करते दिखते तो मसानी अक्सर अमेरिकी और पश्चिम यूरोपीय दृष्टिकोण, जिसे आमतौर पर "मुक्त विश्व" की संज्ञा दी जाती थी, का पक्ष लेते। सोवियत संघ

के पतन तथा पूर्वी यूरोप से सोवियत रेड आर्मी के पीछे हटने के बाद, सोवियत आधिपत्य के दौरान जीवन से संबंधित जो ढेरों जानकारियां उजागर हुई थीं, इसके संदर्भ में शीत युद्ध के दिनों में मसानी ने जो दृष्टिकोण अपनाया था, वह आज ठीक साबित होता दिखता है।

इन मतभेदों को यदि कुछ देर के लिए भुला दें तो हमें नेहरू की इस बात के लिए प्रशंसा करनी होगी कि शीत युद्ध के दिनों में उन्होंने चाहे जो पक्ष लिया हो, पर उनकी अपनी पार्टी का एक सदस्य उनसे एकदम उलट दृष्टिकोण रखने के साथ उनकी नीतियों की आलोचना करने की भी छूट पाए हुए था। अगर संसदीय लोकतंत्र एक संस्थागत स्वरूप ले सका है, बावजूद इस तथ्य के कि इन दिनों होने वाली बहसों का स्तर बहुत नीचा है, तो इसलिए कि नेहरू इससे हटकर कुछ और सोच ही नहीं सकते थे। मसानी ने भी भारत में संसदीय लोकतंत्र को सुदृढ़ करने तथा उसे फलने-फूलने में नेहरू की भूमिका की अनेक अवसरों पर प्रशंसा की है।

1951 का अंत आते-आते जब अंतःकालीन संसद का कार्यकाल पूरा होने वाला था और प्रथम आम चुनावों की तैयारी चल रही थी, मसानी को इस बात में पूरा यकीन था कि नेहरू की कटु आलोचना करते रहने व नवंबर 1950 में सरदार पटेल की मृत्यु हो जाने के बाद अब उन्हें लोक सभा का चुनाव लड़ने के लिए कांग्रेस पार्टी की तरफ से नामांकित नहीं किया जाएगा। यदि बंबई प्रदेश कांग्रेस कमेटी उनके नाम की सिफारिश कर भी देती, तब भी, वह अपने नामांकन को रद्द होते देखने का जोखिम नहीं उठाना चाहते थे, अतएव मसानी ने चुनाव न लड़ने का निर्णय ले लिया। उन्होंने अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ इंटरनेशनल एजुकेशनल के निमंत्रण पर तटीय क्षेत्रों के अमेरिकी विश्वविद्यालयों का दौरा करने का फैसला किया और इस प्रकार चुनाव की संपूर्ण अवधि तक वह देश से बाहर रहे और प्रथम आम चुनावों के समापन के बाद ही भारत लौटे।

9

स्वतंत्र पार्टी का जन्म

मसानी 1952 के आम चुनावों को टाल गए। कांग्रेस पार्टी की आर्थिक एवं विदेश नीतियों की वजह से यद्यपि उनके मन में पार्टी के प्रति कोई मोह नहीं रहा था, फिर भी, उन्होंने औपचारिक रूप से त्यागपत्र नहीं दिया था। हां, अपनी सदस्यता का नवीकरण न करवाकर वह उसके एक तरह से सदस्य नहीं रहे थे।

बहुत पहले 1939 में ही राममनोहर लोहिया ने अपने एक पत्र में, जब मसानी ने कांग्रेस सोशलिट पार्टी से त्यागपत्र दे दिया था, उनके लिए एक भविष्यवाणी कर दी थी, "आपके लिए कोई भी वह काम उचित नहीं रहेगा, जो राजनीतिक गतिविधियों के लिए आपको पूरी स्वतंत्रता न देता हो।" जब लोहिया ने यह पत्र लिखा था, तब उन्हें इस बात का आभास नहीं था कि जिस कंपनी में मसानी नौकरी कर रहे हैं, उसे उनकी राजनीतिक गतिविधियों के लिए कोई एतराज नहीं होगा—बस, इसकी वजह से कंपनी का काम प्रभावित नहीं होना चाहिए और वह प्रतिपक्ष की राजनीति से जुड़े न रहें। वह तब तक 16 वर्षों से टाटा की नौकरी में थे—छोटे-छोटे कुछ विरामों को छोड़कर। पहला विराम वह था, जब 1942 में उन्होंने भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लिया था और अपनी गिरफ्तारी दी थी और दूसरा विराम वह था, जब वह ब्राजील में भारत के राजदूत नियुक्त हुए थे। उन दोनों मौकों के लिए—जब वह जेल से रिहा हुए और जब उन्होंने राजदूत के पद से त्यागपत्र दिया—जे.आर.डी.टाटा की उदारता तथा मसानी की

व्यक्तिगत प्रबंधन-कुशलता की सराहना की जानी चाहिए। दोनों बार उनकी टाटा की नौकरी में वापसी हुई थी। अंतःकालीन संसद/संविधान सभा के अपने संपूर्ण कार्यकाल में वह टाटा एग्ज़िक्यूटिव के पद पर बने रहे थे।

सन् 1956 आते-आते वह इस बात से बहुत परेशान थे कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत देश का झुकाव 'वाम' की तरफ होता जा रहा है और राज्य 'अर्थव्यवस्था पर प्रभावशाली नियंत्रण' रखने के पक्ष में है, तो दूसरी तरफ देश के शासन पर कम्युनिस्टों का प्रभाव प्रबल होता जा रहा है। तब मसानी की राजनीतिक सहज समझ ने फैसला किया, "अब वह समय आ गया है जब नई राजनीतिक शुरुआत होनी चाहिए ताकि विभिन्न समाजवादी एवं कम्युनिस्ट पार्टियों के एकाधिकार को समाप्त किया जा सके।" उनके दिमाग में एक ऐसी उदार पार्टी की कल्पना थी, जिसकी नीतियां तथा कार्यक्रम अन्य राजनीतिक पार्टियों से अलग तरह की होंगी क्योंकि इन पार्टियों द्वारा "स्वतंत्रता के बाद से लोगों के सामने सिर्फ सामूहिक स्वर्ग के विभिन्न रूपों को ही प्रस्तुत किया जाता रहा है।" मसानी ऐसे व्यक्ति थे, जो विचार को कोई रूप देने में बहुत अधिक समय नष्ट नहीं करते थे। उन्हें महसूस हुआ कि 1957 का आम चुनाव सिर पर है, अतः एक ऐसी नई पार्टी के गठन के लिए पर्याप्त समय नहीं मिल पाएगा। उन्होंने अपने अनेक मित्रों से बातचीत की, जिनमें टाटा में ही काम करने वाले एक सहयोगी कर्नल लेसली साहनी भी थे। कर्नल साहनी ने स्वतंत्रता के तुरंत बाद सेना से समय-पूर्व अवकाश ले लिया था, वह मसानी के विश्लेषण से पूर्णतया सहमत थे। दोनों इस बात पर भी सहमत थे कि दूसरा आम चुनाव बहुत नजदीक होने के कारण किसी नई राजनीतिक पार्टी का गठन नहीं किया जाना चाहिए लेकिन ऐसे वरिष्ठ नागरिकों से, जो जरूरी नहीं कि राजनीतिज्ञ ही हों, निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़ने का आग्रह जरूर किया जाना चाहिए और यदि ये लोग चुनाव जीत जाते हैं तो इससे दो प्रयोजन सिद्ध होंगे। तब संसद में कुछ ऐसे सदस्य पहुंच जाएंगे, जो राज्य-नियंत्रणवादी नीतियों का विरोध कर सकेंगे और दूसरे, मुक्त अर्थव्यवस्था के समर्थक के रूप में अपना पक्ष भी रख सकेंगे। इन दोनों ने मसानी के अलावा कुछ अन्य मित्रों को 1957 की लोक सभा के लिए निर्दलीय उम्मीदवार

के रूप में चुनाव लड़ने के लिए राजी कर लिया। ये थे : होमी मोदी, संविधान सभा के सदस्य, बैंकर और हाउस ऑफ टाटा'ज़ के सलाहकार; एस.गोयल, एक व्यापारी; आर.वी.मूर्ति, पत्रकार एवं *कामर्स* के संपादक; एच.आर. पारदीवाला, एक वकील; और एरिक डी'कास्टा, पत्रकार एवं *ईस्टर्न इकानॉमिस्ट* के संपादक।

जे.आर.डी.टाटा ने मसानी द्वारा संसदीय राजनीति में लौटने के प्रयास का जनहित में स्वागत किया। लेकिन उन्होंने मसानी को सावधान कर दिया कि निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में यदि वह चुनाव जीत जाते हैं, तब उन्हें कांग्रेस सरकार के विरोधी दल के रूप में प्रतिपक्ष में बैठना होगा, अतः ऐसी स्थिति में उन्हें टाटा संगठन के एग्ज़िक्यूटिव पद से त्यागपत्र देना होगा। मसानी ने महसूस किया कि जे.आर.डी.टाटा ऐसा "टाटा ग्रुप ऑफ कंपनीज़ के शेयर होल्डरों के हित में कर रहे हैं।" मसानी ने चुनाव के परिणामों तक प्रतीक्षा करना उचित नहीं समझा और उससे पहले ही त्यागपत्र देकर बिहार से एक निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में अपना नामांकन पत्र दाखिल करने के लिए रांची चले गए।

संसद का सदस्य होने के बाद मसानी वेतन, भत्ते और नवाज़मात पाने के अधिकारी हो गए थे, जो तब उस उदारता से नहीं मिलते थे जैसाकि आजकल है। अतएव 'आजीविका की तलाश' की समस्या अब उतनी गंभीर नहीं रह गई थी जैसी कि 'समाजवादी वर्षों' में थी, इसलिए उन्होंने सोचा कि मैं यदि निर्वाचित हो जाता हूं, तब अपना कोई व्यवसाय जरूर करूंगा। टाटा के यहां सोलह वर्षों तक काम करने से उन्हें अनेक क्षेत्रों के अनुभव प्राप्त हो गए थे—औद्योगिक संबंधों से लेकर जन संपर्क तक, जिसमें निजी तथा कारपोरेट प्रबंधन भी शामिल थे। अंततः उन्होंने प्रबंधन परामर्श का व्यवसाय शुरू करने का निर्णय लिया और अपनी फर्म का नाम रखा 'पर्सोनेल एंड प्रोडक्टिविटी सर्विसेज़' (पीपीएस)। पीपीएस ने कार्मिक प्रबंधन और औद्योगिक संबंधों, उत्पादकता, संगठन एवं प्रणाली, प्रबंधन संबंधी प्रशिक्षण एवं विकास और जन संपर्क में विशेषज्ञता प्राप्त कर ली थी। आठ लोगों के स्टॉफ वाली इस फर्म में दो या तीन ऐसे परामर्शक थे, जिन्हें उद्योग-जगत का अच्छा अनुभव प्राप्त था और इस प्रकार मसानी को इससे अच्छी आमदनी

होने लगी तथा वह उस काम से तब निस्संकोच जुड़ गए जो उन्हें बेहद पसंद था अर्थात राजनीति से। व्यवसाय और राजनीति का यह मिश्रण अच्छा साबित हुआ हालांकि उन्होंने एक क्षेत्र को दूसरे क्षेत्र में कभी दखल नहीं देने दिया।

संसद में वापिस पहुंच जाने के बाद उन्होंने उन निर्दलीय संसद-सदस्यों का साथ दिया, जो निर्दलीय संसदीय ग्रुप (इंडीपेंडेंट पार्लियामेंट्री ग्रुप) के रूप में जाने गए। इस ग्रुप की संचालन समिति में शामिल थे : जयपाल सिंह, झारखंड पार्टी के नेता, जिन्होंने मसानी को एक निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में न केवल सहयोग दिया था बल्कि अपनी पार्टी का चुनाव-चिह्न भी प्रयोग करने दिया था; फ्रेंक एंथनी, एंग्लो-इंडियन समुदाय के प्रतिनिधि के रूप में नामांकित सदस्य; बीकानेर के महाराजा करणी सिंह। मसानी इस समिति के सदस्य के रूप में चुन लिए गए थे। उन्होंने तुरंत एक उदार जनतांत्रिक पार्टी गठित करने के अपने प्रयास तेज कर दिए। जैसाकि हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं, उनके लिए संसद में आने के कारणों में यह बात एक बुनियादी बात थी। अपने उपरोक्त प्रयास के लिए उन्होंने जिन लोगों से सबसे पहले संपर्क साधा, वे कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में उनके सहयोगी रहे थे।

यहां एक छोटा-सा विषायांतर जरूरी हो गया है। कांग्रेस के समाजवादी सदस्य भारत के विभाजन के विरुद्ध थे। जून 1947 की अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में तत्संबंधी एक निर्णय लिया जाना था, लेकिन जेपी गांधी जी से यह बात मनवाने में असफल रहे कि वह बैठक में विभाजन के खिलाफ बोलें। गांधी जी ने जेपी से कहा कि वह विभाजन के पक्ष में तो नहीं हैं, पर वह इसके खिलाफ भी नहीं बोलेंगे और उन्होंने जेपी को भी कांग्रेस पार्टी के बंट जाने के प्रति सावधान किया। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने विभाजन के विरुद्ध प्रस्ताव पेश किया। यह प्रस्ताव 157 के मुकाबले 29 मतों से गिर गया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने भारत के विभाजन के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सदस्यों ने संविधान सभा की कार्रवाई में भाग नहीं लिया। उन्होंने कांग्रेस पर दोष लगाया कि 'जाली संविधान सभा

में भाग लेकर वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हाथों बिक गई है।' कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने कानपुर में अखिल भारतीय समाजवादी सम्मेलन का आयोजन किया जिसमें मसानी को भ्रातृ-प्रतिनिधि (फ्रेटर्नल डेलीगेट) के रूप में आमंत्रित किया गया था। मसानी सम्मेलन में शामिल तो हुए, पर जेपी तथा अन्य समाजवादियों को संविधान सभा का बहिष्कार न करने के लिए राजी नहीं करवा पाए। 1948 में सोशलिस्ट पार्टी ने 'कांग्रेस' से अपने संबंध तोड़ लिए और यह एक अलग राजनीतिक पार्टी बन गई।

सोशलिस्ट पार्टी ने बड़े पैमाने पर पहले आम चुनाव में भाग लिया था और सत्ता में आने का अपना दावा भी पेश किया था। पर इसमें उसकी जबरदस्त हार हुई। कुछ समय बाद ही सोशलिस्ट पार्टी दो भागों में बंट गई—प्रजा सोशलिस्ट पार्टी (पीएसपी) और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी (एसएसपी) के रूप में। इनमें पहली पार्टी का नेतृत्व जेपी ने संभाला, जबकि दूसरी ने राममनोहर लोहिया को अपना नेता चुना था। जो दूसरी पार्टी में शामिल हुए, उन्हें 'लोहिया सोशलिस्ट' कहा जाता था।

अब मसानी द्वारा एक उदार नई पार्टी के गठन के प्रयासों पर चर्चा कर ली जाए। उन्होंने गंगा शरण सिंह अथवा गंगा बाबू से संपर्क साधा, जो तब पीएसपी के अध्यक्ष थे। अपने सुविचारित पत्र में मसानी ने अपनी इस गोपनीय बात को प्रकट किया कि वह "उदार विचार वाली एक नई पार्टी" बनाने पर विचार कर रहे हैं और साथ ही उन्हें आश्वस्त किया कि मेरे तथा पीएसपी के समाजवादी लोकतांत्रिक नेताओं, जिनका प्रतिनिधित्व गंगा बाबू करते हैं, के ''परस्पर निकट आने की बहुत गुंजाइश है'' क्योंकि जहां तक "जनतंत्र तथा सर्वसत्तावाद के खतरे का प्रश्न है, उस बारे में हमारी बुनियादी समझ समान है।'' मसानी ने यह भी सुझाया कि पीएसपी यदि अपने नाम से समाजवादी शब्द हटा देती है तो वह ''बहुत दूर तक नई पार्टी के कार्यक्रम के अंतर्गत समाजवाद के उद्देश्यों एवं सामाजिक न्याय की बातों को स्वीकार करने को तैयार हैं।'' अपने सहयोगियों से विचार-विमर्श करने के बाद गंगा बाबू ने मसानी की इस बात को ठुकरा दिया। उनका कहना था कि मेरे अधिकांश सहयोगी इसके पक्ष में नहीं हैं क्योंकि पीएसपी का आम कार्यकर्ता समाजवाद के प्रति इतना अधिक समर्पित है कि 'यदि

पीएसपी के नेतृत्व द्वारा इसके विरुद्ध कोई ऐसा प्रयास किया जाता है तो ये कार्यकर्ता उसे कभी फलीभूत होने नहीं देंगे।' अपने पुराने सहयोगियों को मनाने में विफल रहने पर मसानी ने इस घटना के बारे में यूं लिखा है–

> मैंने तब सोचा, और आज भी मैं ऐसा ही सोचता हूं, यह घटना एक बहुत बड़ी त्रासदी से कम नहीं थी। भारतीय समाजवादी, मुझे लगा, आज भी उस अतीत में रह रहे हैं, जब पूंजीवाद से स्वतंत्रता तथा सामाजिक न्याय को खतरा था। इन्हीं मूल्यों को सर्वसत्तावादी चरित्र के राज्य की ओर से आने वाले नए खतरे की तरफ उनका ध्यान ही नहीं था। वे तो 'राष्ट्रीयकरण' और 'समानता' जैसे उन मतवादी नारों को समर्पित थे, जिसे बीसवीं शताब्दी के पश्चिम के समाजवादियों जैसेकि ह्यूज गेटस्केल, ब्रिटेन की सोशलिस्ट यूनियन और जर्मनी की जर्मन सोशल डेमोक्रेटिव पार्टी ने कब का छोड़ दिया था। कौन कह सकता है कि तब क्या होता, जब भारत के उदार तथा जनतांत्रिक समाजवादियों ने इस समय परस्पर मिलकर एक प्रगतिशील राष्ट्रीय जनतांत्रिक पार्टी का निर्माण कर लिया होता? भारत का इतिहास तब कुछ और ही तथा खुशी से भरा होता। निस्संदेह, 1970 में, देश की तब एक वैकल्पिक सरकार देने के प्रयास की विफलता को टाला जा सकता था। मुझे हमेशा यह लगता है कि 'वाम' का रूढ़िवाद उतना ही घातक है, जितना 'दक्षिण' का रूढ़िवाद। अच्छे लोगों द्वारा अपनी तोपों का मुंह, पुराने दुश्मनों से हटाकर नए दुश्मनों की तरफ, घुमाने की असमर्थता के कारण अनेक त्रासदियों को हमें देखना पड़ा है और यह उनमें से एक त्रासदी थी।

इस झटके के बावजूद मसानी ने अपनी योजना को कार्यरूप देने के प्रयत्नों को जारी रखा। वे सी.राजगोपालाचारी तथा जयप्रकाश नारायण से मिले। मसानी भावी पार्टी के लिए एक नेता की तलाश में थे और इसी संदर्भ में हमें पता चलता है कि मसानी अपनी कमियों को लेकर कितने अधिक सजग थे। एक राजनीतिक नेता के रूप में उन्हें अपने बारे में कोई मुगालता नहीं था हालांकि अपनी क्षमताओं के बारे में वह पूरी तरह आश्वस्त

थे। उन्होंने अपना जो मूल्यांकन किया है, वह एक राजनीतिज्ञ के संदर्भ में असाधारण बात है और उनके व्यक्तित्व को खूब उजागर करता है :

> मुझे इस तथ्य के बारे में कभी कोई भ्रम नहीं रहा कि मेरे व्यक्तित्व में राजनीतिक अपील नहीं है, जिसकी भारत जैसे देश में जरूरत होती है। मैंने भारतीय राजनीति में खुद के लिए हमेशा नंबर दो पर रहकर अपनी भूमिका निभाने की कल्पना की है; वही इस मशीन को तब सुचारु रूप से संचालित कर सकता है, जब करिश्मे से भरपूर बहां नेतृत्व देने वाला कोई व्यक्ति विद्यमान हो। मैंने 1930 के दशक में जेपी के साथ और 1960 के दशक में राजा जी के साथ इसी तरह की भूमिका निभाई थी।

और, मसानी की दृष्टि में, भारत को किस तरह के नेता की जरूरत थी?

> भारत के लिए स्वीकार्य नेता की मेरी परिभाषा यह थी कि यहां की परंपरा में ऐसे नेता की गहरी जड़ें हों और उसका व्यक्तित्व सरल व जमीन से जुड़ा हो। दुर्भाग्यवश मुझ में इसका अभाव था। इसके अलावा यह बात उसकी जीवन-शैली, पोशाक और सादगी द्वारा प्रकट होनी चाहिए तथा पश्चिमी 'बुराइयों' जैसेकि शराब पीना व बालरूम डांसिंग, से उसे परहेज हो।

राजा जी ने अपने खराब स्वास्थ्य और बड़ी हुई उम्र का हवाला देकर नई पार्टी का नेतृत्व करने की बात को टाल दिया और जयप्रकाश नारायण ने भी यह कहते हुए अपना हाथ खींच लिया कि दल-गत पद्धति में उन्हें विश्वास नहीं है, बिना पार्टी का लोकतंत्र ही उन्हें स्वीकार्य है और फिलहाल वह सर्वोदय आंदोलन के काम में पूरी तरह संलग्न हैं।

नई पार्टी बनाने की दिशा में 1957 और 1958 में बहुत कम अथवा न के बराबर प्रगति हुई। और फिर 1959 में एक ऐसा मौका आया जिसकी प्रतीक्षा मसानी कब से कर रहे थे। जनवरी 1959 में अपनी एक बैठक में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने एक प्रस्ताव पारित किया, जो संयुक्त सहकारी खेती (ज्वाएंट कोआपरेटिव फार्मिंग) के नागपुर प्रस्ताव के नाम

से जाना जाता है। इस प्रस्ताव को अनेक लोग, कांग्रेस के भीतर के भी कुछ लोग, कृषकों के भू-स्वामित्व पर हमला मानते थे। इस प्रस्ताव का विरोध करने वालों का नेतृत्व चौधरी चरण सिंह कर रहे थे, जो उन दिनों उत्तर प्रदेश की कांग्रेस सरकार के राजस्व मंत्री थे और खुद भी एक किसान तथा भूमिधर कृषक थे तथा सामूहिक खेती के घोर विरोधी थे। हालांकि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने इस प्रस्ताव को भारी बहुमत से स्वीकार कर लिया था, पर सचाई यही है कि बहुत बड़ी संख्या में प्रमुख कांग्रेसी लोग इस बात से बहुत दुखी थे कि नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस देश को जिस दिशा में ले जा रही थी, वे उसे ठीक नहीं मानते थे। यह दिशा थी सोवियत पैटर्न पर समाजवाद की तरफ आगे बढ़ना, न कि पश्चिमी यूरोप के मॉडल वाले लोकतांत्रिक समाजवाद की तरफ आगे बढ़ना।

संसद में राष्ट्रपति के अभिभाषण पर हुई बहस के दौरान नेहरू ने सहकारी खेती और कृषि संबंधी सुधारों की चर्चा की थी। क्योंकि राष्ट्रपति का अभिभाषण सत्ता में मौजूद पार्टी की नीतियों की रूपरेखा प्रस्तुत करता है, संसद द्वारा इसकी स्वीकृति को उन नीतियों की पुष्टि होना माना जाता है। मसानी ने निर्दलीय संसदीय ग्रुप की ओर से दो संशोधन प्रस्तुत किए। संशोधनों में यह आशा व्यक्त की गई थी कि राष्ट्रपति के अभिभाषण में सहकारी खेती तथा कृषि संबंधी सुधारों के जो संदर्भ आए हैं, इनका सत्ता पक्ष द्वारा प्रस्तावित संयुक्त सहकारी खेती तथा भूमि के उच्चतम सीमा निर्धारण (सीलिंग) के प्रस्तावों से कोई संबंध नहीं है।

सोवियत संघ ने जिस नृशंसता से कृषि को सामूहिकीकरण में बदला है, उसकी तरफ ध्यान दिलाने के लिए, बहस में हिस्सा लेते हुए, मसानी ने कहा था :

> मुझे लगता है कि हम फिलहाल दो विकल्पों से जूझ रहे हैं। एक विकल्प के अंतर्गत तीन साल बाद भूमिधर कृषकों को नष्ट करने का कार्यक्रम गंभीरतापूर्वक चलाया जाएगा और सामूहिक खेती शुरू करवा दी जाएगी। मैं यही आशा करता हूं कि यह विकल्प नहीं अपनाया जाएगा। पर यदि यह विकल्प अपनाया जाता है तो यह धमकियां देकर, बल का

> प्रयोग कर ही संभव हो सकेगा और मैं बिना किसी हिचक के यह कहना चाहूंगा कि इस विकल्प को अपनाने से दुर्भाग्यवश गृह-युद्ध छिड़ सकता है और देश के हजारों लोग खून-खराबे एवं मौत के शिकार हो जाएंगे। मेरा मानना है कि कोई यदि यह सोच रहा है कि वह भारत के किसानों को अपनी जमीनें देने के लिए राजी कर उन्हें दिल्ली या किसी अन्य राज्य की राजधानी की जमींदारी का दास बना देगा, तो यही कहा जाएगा कि ऐसा व्यक्ति काल्पनिक लोक में रह रहा है।

बहस का उत्तर देते हुए प्रधानमंत्री नेहरू ने स्पष्ट किया कि वह संयुक्त सहकारी खेती के पक्षधर हैं, न कि सामूहिक खेती के। इस बात को स्वीकार करते हुए कि भारत के किसान रूढ़िवादी हैं, उन्होंने जोर देकर कहा कि ऐसा कोई संसदीय विधेयक पारित नहीं किया जा रहा लेकिन भारत के किसान यदि संयुक्त खेती करने का फैसला करते हैं तो उन्हें ऐसा करने से रोका नहीं जाना चाहिए। क्योंकि कांग्रेस पार्टी के अधिकांश सदस्य इस निर्णय के पक्ष में नहीं थे, अतएव नागपुर विधेयक कभी लागू नहीं हुआ।

इस बीच संसद से बाहर, मद्रास में, आयोजित एक कृषि अधिवेशन को संबोधित करते हुए राजा जी ने कहा कि प्रधानमंत्री द्वारा राजनीतिज्ञों तथा लोगों को दी जाने वाली 'धमकियां' कि आप लोग हमारी योजनाओं को स्वीकार करें और साथ ही यह हिदायत कि "यदि आप हमसे सहमत नहीं हैं तो आप पार्टी छोड़ दें", उनके 'हिटलरवादी' होने का सबूत पेश करती हैं। भारत किसान संघ ने इसे लेकर विरोध-प्रदर्शन किया। प्रोफेसर एन.जी.रंगा ने, जो कांग्रेस के सांसद थे और चरण सिंह की तरह भूमिधर कृषकों के घोर पक्षधर थे, कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया और विपक्ष में शामिल हो गए। उन्होंने कृषिकार लोक पार्टी का गठन कर लिया था।

नागपुर विधेयक तथा संसद में हुई बहस की यहां विस्तार से चर्चा इसलिए की गई है क्योंकि किसान-समर्थक, बाजार-अर्थव्यवस्था-समर्थक 'स्वतंत्र पार्टी' को बनाने का यही विधेयक 'प्रबल कारण' बना था। राजा जी ने पहले अपनी बड़ी उम्र (वह तब 80 वर्ष के थे) की वजह से नई पार्टी के गठन में भागीदारी करने से मना कर दिया था, पर अब उन्होंने न केवल अपना फैसला बदला बल्कि 7 जून, 1959 को चेन्नई की एक

आम सभा में नई पार्टी के गठन की घोषणा तो की ही, उसका 'स्वतंत्र पार्टी' नामकरण भी कर दिया। इस आम सभा से पहले राजा जी, एन.जी. रंगा तथा वी.पी.मेनन की एक गुप्त बैठक हुई थी जिसमें उन सिद्धांतों को अपनाया गया था जिसे राजा जी ने तैयार किया था और साथ ही एक प्रेस विज्ञप्ति भी तैयार कर ली गई थी जिसमें नई पार्टी के पदाधिकारियों की सूची में प्रो. एन.जी.रंगा को अध्यक्ष घोषित किया गया था। वैसे राजा जी ने नई पार्टी के अध्यक्ष का पद-भार पहले जयप्रकाश नारायण के लिए सोचा था, जो उन दिनों मद्रास में ही थे। पर जेपी ने एक बार फिर यह पद यह कहते हुए ठुकरा दिया कि उन्होंने दल-गत राजनीति को छोड़ दिया है।

1 और 2 अगस्त, 1959 की बैठक में स्वतंत्र पार्टी का आरंभिक अधिवेशन आयोजित किया गया जिसमें नई पार्टी का विधिवत उद्घाटन हुआ तथा उसकी सिद्धांत-सूची को अपनाने संबधी प्रस्ताव को स्वीकृति दी गई। आयोजन समिति के अध्यक्ष होने के नाते मसानी पहले बोले और सत्ता पक्ष की भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कमेटी का विकल्प खोजने पर भी वह खुलकर बोले और साथ ही इस बात पर उन्होंने प्रकाश डाला कि स्वतंत्र पार्टी कैसे कांग्रेस पार्टी का स्थान ले सकती है। उनके इस भाषण, तथा अगले दशक में दिए गए उनके अनेक भाषणों, ने नई पार्टी का चरित्र मध्यम मार्ग की पार्टी के रूप में निर्धारित कर दिया, जो सामाजिक न्याय की मांग को कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के समाजवादियों के समकक्ष ला खड़ा करती है परंतु साथ ही वैयक्तिक स्वतंत्रता, गरिमा से जीने के अधिकार तथा संपत्ति के अधिकार पर भी बल देती है।

आप में से वे लोग, जिन्होंने इस बारे में पढ़ा था और आज जीवन के तीसरे या चौथे दशक में हैं, इस बात को अच्छी तरह समझ सकते हैं कि स्वतंत्रता के एक दशक बाद राजनीति व अर्थव्यवस्था की दशा एवं दिशा कैसी थी और 1989 तक इन्हीं नीतियों को अपनाया जाता रहा था। यहां उनके भाषण के कुछ विशिष्ट अंशों में देखें :

> स्वतंत्र पार्टी के अस्तित्व में आने के बाद, एक अर्थ में, स्वतंत्रता-पश्चात का युग समाप्त होता नजर आता है जिसमें स्वतंत्रता के संघर्ष की

आंदोलनात्मक राजनीति अपनी उपस्थिति बनाए हुए है... अब इसके बाद देश में सामान्य संसदीय लोकतंत्र की शुरुआत होती नजर आने लगती है जिसमें लोकतांत्रिक संविधान के रूप में उसकी स्वतंत्रता सही अर्थों में चट्टान की तरह दृढ़ दिखाई देती है। स्वतंत्र पार्टी का प्रादुर्भाव हमारे देश में राजनीतिक परिपक्वता का संकेत देता है।

तत्पश्चात उन्होंने तब की सत्तारूढ़ पार्टी की, स्वतंत्रता के बाद की, नीतियों से होने वाले किन्हीं विपरीत परिणामों का ब्यौरा दिया है। ऐसे परिणामों में शामिल हैं :

1. संयुक्त खेती, भूमि के उच्चतम सीमा निर्धारण (सीलिंग), और अनाज के व्यापार पर राज्य का एकाधिकार—ये अनाज उत्पादन और ग्रामीण जीवन के सामरस्य को गहरा नुकसान पहुंचा सकते हैं।
2. राजनीति के आकाओं द्वारा देश के प्रशासन में हस्तक्षेप और लाइसेंस देने के मामलों में अधिकारियों पर दबाव डालना—इसने व्यवस्था में लोगों के विश्वास को बहुत क्षति पहुंचाई है।
3. कराधान की अत्यधिक ऊंची दर से न केवल करदाताओं को हानि पहुंची है बल्कि उपभोक्ता भी प्रभावित हुए हैं, जो पहले से ही मंहगाई से परेशान थे।
4. हमारी (पंचवर्षीय) योजनाओं का विस्तार और हमारे स्रोतों का संकुचन—ये दोनों बातें साथ-साथ हो रही हैं।

"असहिष्णुता को हम केवल देख ही नहीं रहे," मसानी का कहना था, "बल्कि इसे एक सिद्धांत का जामा भी पहनाया जा रहा है। परिणामस्वरूप आर्थिक जीवन के प्रमुख लक्षण आज भय, संकोच और अनिश्चय बन गए हैं क्योंकि इसमें यही पता नहीं होता कि सरकार आगे क्या कदम उठाएगी। पहली बार कोई राजनीतिक पार्टी आगे बढ़कर ऐसी बातें कह रही है, जो लोगों के दिमाग में पहले से हैं।"

"आखिरकार," मसानी ने कहा, "भारत में एक ऐसी व्यापक आधार वाली पार्टी आई है, जो स्पष्ट तौर पर सत्तारूढ़ पार्टी का विकल्प सुझाती है और जो समाजवाद के आदर्शों, जिसे राज्य पूंजीवाद कहना ज्यादा उपयुक्त होगा, को संपूर्णता में रद्दकर वैयक्तिक अधिकार को केंद्रीय स्थान प्रदान करती है।"

स्वतंत्र पार्टी के नेतृत्व और आधारभूत दर्शन से जुड़े सभी संदेहों का निराकरण करते हुए मसानी ने जोर देकर कहा था, "राजा जी के प्रेरणादायक नेतृत्व में स्वतंत्र पार्टी आंतरिक सचाइयों को अपनाने की कोशिश करेगी। हम लोग फिर से देश को नेहरू के बजाय गांधी की दिशा की तरफ चलाएंगे। हम लोग अपने देश की महान सांस्कृतिक विरासत तथा उसकी आध्यात्मिक परंपराओं से प्रेरणा ग्रहण करते रहे हैं।"

10

स्वतंत्र पार्टी का उत्थान और पतन

7 जून, 1959 को स्वतंत्र पार्टी के गठन के तुरंत बाद राजा जी ने पार्टी का केंद्रीय कार्यालय मद्रास में खोलने में कोई समय नहीं लगाया। उन्होंने एस.वाई. कृष्णास्वामी, अवकाश-प्राप्त आईसीएस अधिकारी, को पार्टी का महासचिव नियुक्त किया और इस कार्यालय को चलाने का दायित्व उनको सौंप दिया। पर राजा जी ने मसानी के बजाए एस.वाई.कृष्णास्वामी को महासचिव क्यों चुना? मसानी इसका एक साधारण-सा कारण बताते हैं कि केंद्रीय प्रबंध समिति के वह तदर्थ-सदस्य क्यों बने रहें, जबकि 7 जून की ही बैठक में एन.जी.रंगा को अध्यक्ष नामांकित कर दिया गया था। उनका कहना यह था कि वह 7 जून की बैठक में शामिल नहीं हो सके थे क्योंकि कलकत्ता से एयरलाइंस की उड़ान देर से शुरू हुई थी, जहां वह अपने व्यावसायिक काम से गए हुए थे।

अपने संस्मरणों में मसानी ने पछतावा प्रकट करते हुए लिखा है कि उड़ान की देरी की वजह से वह मद्रास में राजा जी द्वारा आयोजित 7 जून, 1959 की गोपनीय बैठक में भाग नहीं ले सके थे। 7 जून को मसानी कलकत्ता में थे और उन्होंने मद्रास की बैठक में समय पर पहुंचने के लिए काफी सुबह की उड़ान बुक कराई थी। पर उड़ान में देरी हुई और इस तरह उनका काफी समय दमदम एयरपोर्ट के वीआईपी कमरे में सर ए.रामास्वामी मुदलियार की दिलचस्प संगति में बीता था। वह मद्रास शाम 5 बजे ही पहुंच पाए थे और उन्होंने सीधे वुडलैंड होटल का रुख किया

था, पर वहां पहुंचने पर उन्हें पता चला कि सारी कार्रवाई समाप्त हो चुकी है। राजा जी, रंगा, वी.पी.मेनन और अन्य अनेक लोग उनकी प्रतीक्षा करते रहे थे ताकि उस दिन के निर्णयों से संबंधित प्रेस विज्ञप्ति पर उनके भी हस्ताक्षर हो जाएं।

उस दिन प्रेस को जारी होने वाली विज्ञप्ति दो भागों में जानी थी जिसमें से पहला भाग उन 21 सिद्धांतों से संबंधित था, जिन्हें स्वयं राजा जी ने लिखा था। मसानी को इसमें कुछ भी आपत्तिजनक नहीं लगा था, अतः उन्होंने इस पर अपनी स्वीकृति देने में कोई समय नहीं लगाया। दूसरे भाग में प्रस्तावित संगठन के पदाधिकारियों के नामों की घोषणा की जानी थी। मसानी को यह सूची देखकर बहुत निराशा हुई थी क्योंकि इसमें अधिकांश लोग दक्षिण भारत से थे, उनकी आयु भी बहुत अधिक थी और युवा-वर्ग इस सूची में सिरे से गायब था। उन्हें लगा, "ये लोग गलत रास्ते पर चल पड़े हैं।" उन्हें स्वतंत्र पार्टी के अध्यक्ष के चुनाव से भी बहुत निराशा हुई थी। पर हर कोई उनके हस्ताक्षरों की प्रतीक्षा कर रहा था, अतः "उनकी हिम्मत नहीं हुई कि इस निर्णय को चुनौती दी जाए और सारे मामले पर पुनर्विचार करने के लिए कहा जाए।"

अगली सुबह मसानी राजा जी से मिले। उन्होंने राजा जी से कहा कि उन्हें न केवल पार्टी का नाम पसंद आया है बल्कि पार्टी के 21 सिद्धांत भी, पर वह प्रबंध समिति के पदाधिकारियों के नामों से सहमत नहीं हैं। इस स्थिति को सुधारने के लिए मसानी का सुझाव था कि मद्रास की बैठक को शिशु के गर्भ में आने की घटना माना जाए और कुछ महीनों बाद एक औपचारिक कार्यक्रम में—जिसमें देश भर से आए लोग सम्मिलित होंगे—पदाधिकारियों तथा समिति के सदस्यों की सूची को फिर से तैयार किया जाए और उसे ही शिशु के जन्म की घटना माना जाए। अंततः बंबई में 1 और 2 अगस्त को आयोजित प्रारंभिक अधिवेशन में राजा जी ने स्वतंत्र पार्टी का विधिवत उद्घाटन किया जिसका उल्लेख हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं।

जून से अक्तूबर 1959 के दौरान नई पार्टी का संगठनात्मक काम काफी शिथिल रहा। राजा जी का मानना था कि उनके द्वारा स्थापित पार्टी

को यदि संगठनात्मक स्तर पर मजबूत होना है तो इसे राष्ट्रीय स्तर का होना होगा और भारत की राजनीति पर इसकी पकड़ होनी चाहिए; इसका संचालन भी सक्रिय और राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्धि-प्राप्त व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए। मसानी इन शर्तों पर पूरे उतरते थे। वह न केवल पार्टी के संस्थापक-सदस्य थे बल्कि इस पार्टी को अस्तित्व में लाने के लिए कार्यशील रहे थे। वह राष्ट्रीय स्तर पर एक राजनीतिज्ञ के बजाय *ऑवर इंडिया* के लेखक के रूप में विख्यात थे, जो कहीं बेहतर स्थिति थी।

अतएव अक्तूबर माह में राजा जी ने मसानी को पार्टी के महासचिव का पद संभालने के लिए आमंत्रित किया। उत्तर में मसानी ने दो समस्याओं की तरफ इशारा किया। इनमें से पहली समस्या संगठनात्मक थी। मसानी इस पद पर रहने वाले व्यक्ति के 'अधिकार तथा कार्यों को लेकर खुलासा' चाहते थे। दूसरी समस्या हमेशा की तरह उनके 'जीविकोपार्जन' से जुड़ी थी, एक ऐसी समस्या जो उनके स्वतंत्रता-संग्राम में कूदने के समय से विद्यमान थी और 1939 में उनके राजनीति से संन्यास लेने का कारण बनी थी।

राजा जी का उत्तर उनके स्वभाव के अनुकूल स्पष्टतावादी था, जो ऐसे मसलों पर अक्सर देखने को मिलता था—चाहे यह मसला छोटा हो या बड़ा। इन दोनों समस्याओं के बारे में उन्होंने लिखा था :

> इससे जुड़ी जो व्यक्तिगत समस्याएं सामने आ खड़ी हुई हैं, इनका समाधान उसी तरह खोजना होगा जैसाकि 1920 के दशक में हमने खोजा था। वर्तमान संकट उतना ही बड़ा है, जैसा तब था। महासचिव के रूप में, आपके अधिकार तथा दायित्व, पार्टी प्रशासन के हर क्षेत्र से जुड़े होंगे, जब तक कि हमारा संविधान पारित नहीं हो जाता। यह पूरी तरह आपके विवेक पर निर्भर करेगा कि आप किसी विषय पर दूसरों से सलाह-मशविरा करना चाहते हैं अथवा नहीं—मैं और रंगा निस्संदेह इसके लिए आपको पूरी तरह आश्वस्त करते हैं। हम अपनी पार्टी की क्षमता को तब तक वास्तविकता में नहीं बदल सकते, जब तक आप पूरे साहस तथा नेतृत्व-कौशल के साथ इसका उत्तरदायित्व संभाल नहीं लेते।

जहां तक कार्यालय बनाने की बात है, मैं दिल्ली के बजाय बंबई को महत्व दूंगा (कलकत्ता को भी, यदि ऐसा करना संभव हो तो)। मेरा विचार है कि हमें दिल्ली के बारे में तब सोचना चाहिए, जब हमारी सदस्यता कम-से-कम दस लाख हो चुकी हो। खर्च को कार्यकुशलता से जोड़ना गलत होगा। बंबई हो या दिल्ली, मैं कार्यालय से दूर ही रहूंगा, पर इससे कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए। जोर इस पर देना होगा कि आपकी सुविधा तथा नियंत्रण बना रहें।

मसानी ने राजा जी के आमंत्रण को स्वीकार कर लिया और 9 दिसंबर, 1959 को हैदराबाद में आयोजित स्वतंत्र पार्टी की सामान्य परिषद की बैठक में उन्हें महासचिव निर्वाचित कर लिया गया।

एक तरफ तो मसानी और राजा जी के बीच इस तरह की वार्ता चल रही थी, तो दूसरी तरफ, व्यक्तिगत स्तर पर मसानी मुझे इंटरव्यू कर यह जानने की कोशिश कर रहे थे कि स्वतंत्र पार्टी के केंद्रीय कार्यालय में मेरे लिए कैसा पद उचित रहेगा। मुझे हैदराबाद से उनका एक तार मिला जिसमें मुझे केंद्रीय कार्यालय का आफिस सेक्रेटरी नियुक्त करने की सूचना थी और मुझे 16 दिसंबर, 1959 को काम पर आने के लिए कहा गया था। हमारे कार्यालय की बिल्डिंग उस बिल्डिंग के ठीक सामने पड़ती थी, जहां उनकी कंसल्टेंसी फर्म थी।

इस तरह, पार्टी प्रशासन के महत्वपूर्ण पहलुओं को सुलझाने से पहले, उन्होंने बुनियादी ढांचा तैयार करना जरूरी समझा ताकि वह अपने नए दायित्व के प्रति न्याय कर सकें। यह दायित्व वैसे यूं उतना नया भी नहीं था क्योंकि बीस से कुछ अधिक साल पहले वह कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के संयुक्त सचिव पद की जिम्मेदारी संभाल चुके थे और तब वह वरीयता-क्रम में सीएसपी के महासचिव जयप्रकाश नारायण से दूसरे स्थान पर थे। इस बार वरीयता-क्रम में वह सी.राजगोपालाचारी के बाद दूसरे स्थान पर थे। हालांकि सी.राजगोपालाचारी के पास स्वतंत्र पार्टी का कोई पद नहीं था, फिर भी, सिंहासन के पीछे की वास्तविक शक्ति वही थे और अपने वायदे के मुताबिक उन्होंने महासचिव के रूप में मसानी के काम में दखल नहीं दिया था, जब

तक कि ऐसा करने के कोई अपरिहार्य कारण न रहे हों। इसके अलावा इन दोनों के बीच एक अनकहा समझौता था कि पार्टी संबंधी तमिलनाडु का कामकाज राजा जी देखेंगे और जरूरत पड़ने पर मसानी की मदद लिया करेंगे।

राजा जी स्वतंत्र पार्टी के वास्तुकार और मसानी इसके निर्माता थे। इसका अर्थ यह नहीं लगाना चाहिए कि पार्टी के वैचारिक व्यवस्थापन में मसानी का योगदान नगण्य था। हम पहले बता चुके हैं कि उनके व्यक्तित्व में बौद्धिक तथा संगठनात्मक गुणों का विरल संयोग था। इन दोनों व्यक्तियों का एक दशक से भी अधिक समय तक घनिष्ठ बने रहने का रहस्य एक विशिष्ट गुण का दोनों में होना था—स्पष्ट सोच, एक तार्किक मस्तिष्क जो भावनाओं में बह नहीं जाता था। यह गुण उन दोनों के लिए बड़ा मूल्यवान साबित होता, जब कठोर निर्णय लेने होते थे। अतः यह बात हैरान करने वाली नहीं थी कि मूलभूत बातों पर इन दोनों में बहुत कम मतभेद सामने आते थे, जबकि कार्य के निष्पादन को लेकर इन दोनों में असहमति की बात नगण्य मौकों पर ही सामने आई थी। और जब 12 वर्ष बाद किसी मूलभूत बात को लेकर इन दोनों में मतभेद हुआ तो इन्होंने उस पार्टी को ही तोड़ दिया, जो इन दोनों ने मिलकर बनाई थी। इसकी विस्तृत चर्चा हम आगे करेंगे। पर उससे पहले सफलता की ऐसी कथा भी है जिसकी दोनों में से किसी ने भी कल्पना नहीं की होगी हालांकि राजाजी तथा मसानी सार्वजनिक रूप से यही कहते रहते थे कि वे लोग पार्टी के संगठनात्मक विकास और दो आम चुनावों में पार्टी के काम से संतुष्ट नहीं हैं।

महासचिव के नाते मसानी ने अपने नए काम में पार्टी संगठक (कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी : 1933-1939) और कारपोरेट एग्ज़िक्यूटिव (टाटा'ज : 1941-1957) के अनुभवों से लाभ उठाया। वह भारतीय विधान सभा, अंतःकालीन संसद और संविधान सभा के छह वर्षों (1945-51) तक सदस्य रहे थे। महासचिव के रूप में निर्वाचित होने के समय वह संसद सदस्य थे और 1957 के आम चुनाव में लोक सभा के लिए चुने गए थे। वह एक योग्य व्यक्ति थे और राजा जी ने उनका चुनाव उचित ही किया था।

वे एक पार्टी के प्रभुत्व के दिन थे। संसद में कांग्रेस के पास कुचल

डालने वाला बहुमत था और ज्यादातर राज्य विधान सभाओं में भी उसका शासन था। वास्तविक शक्ति तथा प्रभाव दिल्ली का ही था। मसानी की संगठनात्मक रणनीति यह थी कि लोक सभा में पार्टी की उपस्थिति मजबूत दिखनी चाहिए। इस लक्ष्य को पाने के लिए उन्होंने पार्टी के संगठन को मजबूत करना शुरू किया। "इसके लिए अच्छी गृह-व्यवस्था और कुशल मैदानी प्रबंध की जरूरत पड़ती है।"

महासचिव बनने के तुरंत बाद से उन्हें यह स्पष्ट हो गया था कि राज्यों में पार्टी नेतृत्व का बड़ा हिस्सा दिल्ली-केंद्रित नीति से संतुष्ट नहीं था। पर मसानी का विश्वास था कि उनकी नीति सही है। उदाहरण के लिए, कोई राज्य इकाई, जैसेकि बंबई, यदि अपने लैटरहैड पर 'बंबई क्षेत्रीय स्वतंत्र पार्टी' अथवा बिहार अपने लैटरहैड पर 'बिहार राज्य स्वतंत्र पार्टी' मुद्रित करवा लेती तो वह पार्टी के राज्य प्रमुख को फौरन याद करवाते कि उसका लैटरहैड गलत है और वहां मुद्रित होना चाहिए 'स्वतंत्र पार्टी, बंबई' अथवा 'स्वतंत्र पार्टी, बिहार'। वह जोर देकर कहते कि केवल एक स्वतंत्र पार्टी है जिसका मुख्य कार्यालय बंबई में है और विभिन्न राज्यों में उस पार्टी की शाखाएं हैं। इस बात के संदर्भ में उनकी सोच साफ थी कि भारत बेशक विभिन्न राज्यों का संघ है और राज्य सरकारों को पर्याप्त स्वायत्तता मिलनी चाहिए लेकिन स्वतंत्र पार्टी तो एकात्मक पार्टी है। निस्संदेह यह बात उनके मन में, समाजवादी होने के दिनों में हुए अनुभव के कारण, राजनीतिज्ञों के प्रति अविश्वास के रूप में घर कर गई थी। उन्होंने संगठनात्मक काम से किए गए दौरों में देखा था कि पार्टी के सदस्य उनकी हर बात पर सहमति में सिर हिला देते थे लेकिन पीठ मोड़ते ही यही सदस्य इसके ठीक विपरीत आचरण करने लगते थे। "फूहड़पन, बेढंगापन और लगभग हमेशा बेमतलब 'जी हां' कहने का स्वभाव हमारे राजनीतिज्ञों में अक्सर देखने को मिल जाता है।" उन्हें अनुभव हुआ कि इस बात की आलोचना उन्हें लोकप्रिय या पसंदीदा व्यक्ति बनाने में आड़े आती है। पर उन्हें इस बात की कोई परवाह नहीं थी। वह अक्सर कहा करते : "मेरा निर्वाचन 'प्रभावशाली' व्यक्ति बनने के लिए हुआ है, न कि 'लोकप्रिय' व्यक्ति बनने के लिए।" उनके प्रचार तथा व्यवहार में कोई भेद नहीं होता था। वह अपने

को अथवा केंद्रीय कार्यालय को अनुशासन के मामले में कभी ढील नहीं बरतने देते थे। उन्होंने मुझे पहले जो आदेश दिए थे, वे बिल्कुल साफ थे। उन्होंने मुझसे कहा था, और उनके शब्द मुझे आज भी अपने कानों में गूंजते सुनाई देते हैं : "याद रखें कि यह स्वतंत्र पार्टी का केंद्रीय कार्यालय है। मैं इसका प्रमुख हूं और मैं इसे सराय की तरह बरते जाने के खिलाफ हूं, भले ही ऐसा व्यक्ति पार्टी का सक्रिय सदस्य ही क्यों न हो। यह कार्यालय किसी भी व्यावसायिक कार्यालय की ही तरह काम करेगा और नियत समय का पालन करेगा। यदि मुझे लगा कि आप इन आदेशों का पालन नहीं कर रहे हैं तो आपको यहां से काम छोड़कर जाना होगा।"

अपने महासचिव होने की अवधि में मसानी ने बंबई, पटना, आगरा, बैंगलोर और दिल्ली में पांच राष्ट्रीय अधिवेशन आयोजित किए थे। इनमें से हरेक अधिवेशन संगठनात्मक कौशल का आदर्श प्रस्तुत करता था। भारत में राजनीतिक पार्टियों के अधिवेशनों में जिस तरह धन के व्यय तथा तमाशे का प्राचुर्य दिखाई देता है, उनके द्वारा आयोजित अधिवेशनों में ये बातें अनुपस्थित रहती थीं। उन्होंने 1962, 1967 और 1971 के आम चुनावों में पार्टी का न केवल संगठनात्मक पक्ष देखा बल्कि नेतृत्व भी किया। पहले दो चुनावों में पार्टी का प्रदर्शन विलक्षण था। 1962 के आम चुनाव में पार्टी ने, जो तब मात्र तीन वर्ष पुरानी थी, लोक सभा की 170 तथा अनेक राज्य विधान सभाओं की 1038 सीटों पर चुनाव लड़ा था। इनमें से लोक सभा के लिए 25 सीटों और राज्यों की विधान सभाओं की 207 सीटों पर पार्टी को विजय हासिल हुई थी (बिहार 50, राजस्थान 36, गुजरात 26, आंध्र प्रदेश 19 और उत्तर प्रदेश 15)। इन परिणामों के फलस्वरूप चुनाव आयोग ने इस पार्टी को राष्ट्रीय पार्टी के रूप में मान्यता और उसे अपना चुनाव-चिह्न सितारा (स्टार) रखने की स्वीकृति दी थी। मसानी ने 1962 का आम चुनाव खुद नहीं लड़ा था ताकि वह पार्टी के चुनाव-प्रचार को दिशा-निर्देश दे सकें तथा संगठन कार्य पर निगाह रख सकें। वह 1963 में राजकोट, गुजरात की संसदीय सीट के उप-चुनाव में कड़े संघर्ष के बाद चुनाव जीत कर संसद में पहुंचे थे।

1967 के चुनावों में पार्टी ने लोकसभा की 175 सीटों तथा राज्यों

की विधान सभाओं की 973 सीटों के लिए चुनाव लड़े थे। इनमें से लोक सभा की 44 और विधान सभाओं की 256 सीटों पर पार्टी ने विजय प्राप्त की थी। (आंध्र प्रदेश 29, गुजरात 66, मद्रास 20, मैसूर 16, उड़ीसा 49, राजस्थान 48 और उत्तर प्रदेश 12)।

लोक सभा में 44 सदस्य होने के कारण यह पार्टी विपक्ष की सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरी थी। राज्य विधान सभाओं में से इसने उड़ीसा में मिली-जुली सरकार बनाई थी, राजस्थान तथा गुजरात की विधान सभाओं में यह आधिकारिक तौर पर विपक्ष की पार्टी थी और आंध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु विधान सभाओं में इसका प्रभावशाली प्रतिनिधित्व था।

1962 तथा 1967 के आम चुनावों के ये प्रभावशाली परिणाम न केवल राजा जी के बुद्धिमत्तापूर्ण नेतृत्व तथा मसानी के संगठनात्मक कौशल के सूचक थे बल्कि राज्य स्तर पर पार्टी के नेताओं के उच्च चरित्र एवं लोकप्रियता को भी दर्शाते थे। ये परिणाम लक्ष्य को पाने के लिए उनकी दृढ़ता के भी सूचक थे। पार्टी के प्रयोजनों को लेकर कोई अस्पष्टता नहीं थी और राजा जी द्वारा प्रारंभिक अधिवेशन में स्वीकृत 21 सिद्धांतों में समावेष्टित थे। एक वर्ष बाद, मार्च 1960 में, पटना में आयोजित राष्ट्रीय अधिवेशन में एक नीतिगत प्रस्ताव "स्वतंत्रता के माध्यम से समृद्धि" पारित किया गया था, जो इस पार्टी को अन्य राजनीतिक पार्टियों से भिन्न तथा विशिष्ट बना देता था। स्वतंत्र पार्टी ने अपना एक संविधान भी अपनाया था, जो संक्षिप्तता तथा स्पष्टता के मामले में बेजोड़ था। पटना अधिवेशन में भाग लेने वाले व्यक्तियों की संख्या इतनी अधिक थी कि इसे प्रसिद्ध व्यक्तियों का 'हूज़ हू' कहा जा सकता था—इनमें से अनेक पहले से प्रसिद्ध थे और अनेक प्रसिद्धी की ओर अग्रसर थे।

महासचिव के रूप में मसानी की पहली रिपोर्ट (उन्हें यह पद संभाले अभी तीन महीने से भी कम समय बीता था) में इस बात का उल्लेख है कि स्वतंत्र पार्टी के नियत कार्य कौन-से होने चाहिए और इन्हें पूरा करने के लिए कैसे प्रयास किए जाएं। इसमें कोई शक नहीं कि उनका एक ध्येय भारत को न केवल परिमाण के स्तर पर अपितु गुण के स्तर पर भी विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र बनाना था!

'पार्टी तथा उसके संगठनकर्ताओं को कौन-सा काम करना है?' अपनी रिपोर्ट में यह प्रश्न उठाकर वह स्वयं ही इसका उत्तर भी देते हैं, 'यह काम है भारतीय जनमत के सामने प्रमुखता से पार्टी के उद्देश्यों, सिद्धांतों तथा नीतियों को गहराई तथा तर्कसंगत तरीके से पहुंचाना। यह काम है पार्टी के प्रति संभाव्य सहानुभूति तथा सहयोग को जन आंदोलन में बदलना। इस प्रकार भारतीय जनता को एक वैकल्पिक सरकार देनी ही होगी, जब जनता उस पर इतना बड़ा उत्तरदायित्व सौंपते हुए इसका आह्वान करेगी। अपने दायित्व के उल्लेख करने का अर्थ है, उसकी विशालता, उसके बेहद व्यापक अनुपात को कबूल करना... इतनी बड़ी चुनौती का सामना कैसे किया जाएगा? इस सायुज्य के कौन-से ऐसे तत्व हैं जिससे यह अस्त्र गढ़ा जा सकता है?'

मसानी ने इन जरूरतों को स्पष्ट किया है। उनके दिमाग में पार्टी के संगठन की रूपरेखा कुछ इस प्रकार की थी :

- **नेतृत्व** : उनका कहना था कि नेतृत्व तो राजा जी ने ही दिया है, ''कुछ इस तरह का कि पार्टी के घोर विरोधी तक इसकी प्रशंसा करते हैं।''
- **संदेश** : पार्टी किस तरह का संदेश देने का प्रयास कर रही है? इसका उत्तर उन 21 सिद्धांतों में निहित है, जो सात महीने पहले बंबई के अधिवेशन में पारित किए गए थे और तत्पश्चात प्रथम राष्ट्रीय अधिवेशन में इस पर विस्तार से चर्चा की गई थी एवं इस नीतिगत वक्तव्य को स्वीकृत किया गया था : 'स्वतंत्रता के माध्यम से संपन्नता को पाना।'
- **प्रसार** : संगठनात्मक माध्यमों से यह संदेश पूरे देश में फैलाया जा सकता है। ''जिन देशों में लोकतांत्रिक कार्यप्रणाली की लंबी परंपरा रही है, वहां राजनीतिक पार्टी की सफलता, किसी व्यावसायिक फर्म की तरह, संगठन तथा प्रबंधन के ठोस सिद्धांतों के अनुपालन पर निर्भर करती है। हमारे राजनीतिक जीवन में, 'सुघढ़ गृह-व्यवस्था' के स्थान पर, अक्सर विचारधारा या पूर्वग्रह के प्रति हमारा आवेश हावी हो जाता है। यद्यपि त्याग तथा ईमानदारी को बहुत ऊंचा दर्जा प्राप्त है, फिर भी, अनुशासनहीनता, किसी दायित्व को स्वीकार कर लेने के बावजूद उस पर पूरा न उतरना,

किसी बैठक में समय पर न पहुंचना या गायब हो जाना, किसी पत्र अथवा पार्टी के सर्कुलर का उत्तर न देने जैसी बातों को हल्के-फुल्के ढंग से टाल दिया जाता है। ठोस संगठनात्मक ढांचे की स्थापना की ओर, कार्यालय के विभिन्न अंगों तथा पदाधिकारियों के कामों के उचित बंटवारे और उत्तरदायित्व संबंधी स्पष्ट दिशा-निर्देशों को अपनाने के मामले में पूरा ध्यान नहीं दिया जाता।

- **पार्टी कॉडर** : मसानी लगभग तीन दशकों तक मार्क्सवादी व समाजवादी रहे थे, अतः वह इस बात को भूले नहीं थे कि राजनीतिक पार्टियों को प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं की जरूरत पड़ती है। "स्वतंत्र पार्टी का एक जरूरी काम," उनका कहना था, "बड़ी संख्या में ऐसे आदमियों व औरतों को ढूंढ़ना, प्रशिक्षित करना तथा मैदान में उतारना है, जो पार्टी के संदेश को दूर-दराज के गांवों तथा शहरों तक फैला सकें।"
- **कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण** : "संगठन में ठीक व्यक्ति को ठीक प्रभावशाली पद पर बैठाना ... इस बात का ध्यान रखना होगा कि पार्टी के विकास के नाम पर, बिना विवेक खोए, सभी लोगों का पार्टी में हम स्वागत कर सकें। महत्व तथा संख्या-बल पर जोर देने के बावजूद गुणात्मकता की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। लोग पुराने चेहरों तथा पुरानी आवाजों से ऊब चुके हैं। वे नई सोच का स्वागत करना चाहते हैं। इसे अच्छी नीति माना जाएगा यदि हम नए तथा अज्ञात लोगों को अधिक महत्व दें—विशेष रूप से युवा लोगों को। यह जरूरी तो है, पर इसे पर्याप्त नहीं मान लेना चाहिए कि कोई कार्यकर्ता लगन तथा ईमानदारी से संपन्न रहते हुए हर वर्ग के लोगों से मेलजोल बनाने में सक्षम है। यह भी उतना ही जरूरी है कि ऐसा कार्यकर्ता पार्टी की नीतियों की अच्छी समझ रखता हो और इन्हें लोकप्रिय बनाने के मामले में भी सक्षम हो, बजाए इसके कि वह समाजवादी नारों को उछालने में सफल रहता है। पार्टी कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण की जरूरत पड़ती है। अध्ययन केंद्रों और प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन पूरे देश में किया जाना चाहिए ताकि उन्हें अपने काम के लिए तैयार किया जा सके।"
- **पार्टी सदस्य** : "स्वतंत्र पार्टी समस्त जनता की पार्टी है और इसके दरवाजे

हर उस आदमी अथवा औरत के लिए खुले हैं, जो इसके सिद्धांतों एवं नीतियों को स्वीकार करता है।" यद्यपि पार्टी के लिए बड़े पैमाने पर नए सदस्यों का बनाना महत्वपूर्ण बात है, पर मसानी स्वतंत्रता-पश्चात की बुराई, बोगस-सदस्यता, से परिचित थे जो तब कांग्रेस पार्टी के संदर्भ में दिखाई दी थी। अतएव उन्होंने सचेत किया कि स्वतंत्र पार्टी में भी वैसी ही स्थिति न बने। "चाहे जो हो जाए, हमें हर हाल में कांग्रेस पार्टी की तरह की 'बोगस' सदस्य बनाने की प्रथा को रोकना होगा, जो स्थानीय समितियों में पद पाने के एक आसान रास्ते के रूप में अपनाई गई है।" इस उद्देश्य के लिए, उनका कहना था, केंद्रीय पार्टी राज्यों की पार्टियों के सदस्यता-रजिस्टरों तथा खातों की सख्ती से जांच व निरीक्षण करेगी ताकि किसी भी तरह का कदाचार प्रवेश न पा सके।

- **प्रचार-सामग्री** : "सभी प्रमुख भाषाओं में पार्टी संबंधी विचारों व नीतियों की प्रचार-सामग्री तैयार एवं वितरित की जाएगी। इस प्रचार-सामग्री में पार्टी के सिद्धांतों एवं नीतियों के ब्यौरों के साथ-साथ वक्ताओं के लिए भाषण संबंधी विषय भी सुझाए जाएंगे और यह सामग्री पार्टी के संगठनकर्ताओं तथा वक्ताओं के लिए उपलब्ध रहेगी।"
- **उम्मीदवारों का शीघ्र चुनाव** : संसद तथा राज्य विधान सभाओं के लिए प्रस्तावित उम्मीदवारों के नामों को समय से काफी पहले अंतिम रूप दे दिया जाएगा ताकि वे अपने-अपने निर्वाचन क्षेत्रों की जरूरी देख-रेख कर सकें। इस नई सोच के लिए मसानी का तर्काधार यह था : "भारत में यह आम बात है कि उम्मीदवारों का मनोनयन, नामांकन के दिन से, केवल कुछ दिन या कुछ सप्ताह पहले ही किया जाता है। मैं यह सुझाव देना चाहता हूं कि स्वतंत्र पार्टी को इस दस्तूर को भूलना होगा और अपने उम्मीदवारों के नामों का फैसला संसदीय बोर्ड द्वारा करने की प्रथा को भी त्यागना होगा क्योंकि यह बोर्ड अपनी कार्रवाई कुछ इस तरह करता है जैसेकि रेलवे बुकिंग आफिस 'टिकटें' बांटता है। मैं किन्हीं आपत्तियों की पूर्व-कल्पना कर सकता हूं, पर मेरा मानना है कि कुल मिलाकर लोकतांत्रिक पद्धति को अपना लेने से, समय आने पर बहुत महत्वपूर्ण परिणाम देखने को मिलेंगे।"

- **निधि** : "किसी भी राजनीतिक गठन के विकास में धन अंतिम लेकिन किसी भी अर्थ में एकमात्र तत्व नहीं होता," मसानी ने यह बात अपनी रिपोर्ट में कही थी। उन्होंने आगे कहा : "यदि पार्टी के कुछ लोग जो इसकी स्थापना के समय से कांग्रेसी नेताओं की तरह ऐसा मानते थे कि पार्टी देश के अमीर लोगों पर निर्भर रह सकती है, मुझे विश्वास है, ऐसे लोगों को इस भ्रम से अब तक मुक्ति मिल चुकी होगी।"

एक महासचिव के नाते वह स्वतंत्र पार्टी को किस दिशा में और किस रीति से आगे बढ़ाना चाहते थे, इस संदर्भ में उन्होंने अपनी रिपोर्ट का समापन एक बहुत स्पष्ट राजनीतिक वक्तव्य से किया है :

> सचाई यही है कि कांग्रेस पार्टी का प्रभाव समाप्त हो रहा है। सवाल उठता है कि इसकी जगह कौन लेगा : लोकतांत्रिक पार्टी जैसेकि स्वतंत्र पार्टी अथवा साम्यवादी अधिनायकत्व? यह कुछ और उपलब्ध कर सके अथवा नहीं, स्वतंत्र पार्टी की देश के प्रति यह एक तरह की सेवा ही होगी कि यह सत्तारूढ़ सरकार के प्रति असंतोष को व्यक्त करने का एक लोकतांत्रिक माध्यम प्रस्तुत करता है। इसके अभाव में चिआंग काई-शेक की तर्ज पर यह भारत को भी 'चीन के रास्ते' पर चलने के लिए विवश कर देता। जैसाकि मैं बंबई अधिवेशन में कह चुका हूं कि साम्यवाद स्वतंत्र पार्टी का दुश्मन नंबर एक है। चुनाव के समय हमारी पार्टी किन्हीं अन्य लोकतांत्रिक पार्टियों के साथ सहयोग करे अथवा नहीं, इसका फैसला लेने का अभी समय नहीं आया। पर एक फैसला पहले से सुनिश्चित है कि कैसी भी परिस्थितियों में हमारी पार्टी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से सहयोग नहीं करेगी। इस बात को लेकर हमारे पदाधिकारियों में किसी भी तरह का भ्रम अथवा दुविधा नहीं होनी चाहिए।

हालांकि मसानी ने संगठनात्मक अनुशासन पर हमेशा बल दिया पर वह इस बात के भी कायल थे कि सदस्य अपने निजी विश्वासों के बारे में अपनी राय व्यक्त करने के लिए भी उतने ही स्वतंत्र हैं। निम्नलिखित

'नीतिगत वक्तव्य' से पार्टी के बारे में मसानी की अंतर्दृष्टि का पता चलता है जो पार्टी के व्यापक आंतरिक लोकतांत्रिक स्वरूप के बारे में आश्वस्त करती है :

> स्वतंत्र पार्टी अन्यों की तुलना में भिन्न पार्टी है। यह इस बात में विश्वास करती है कि वर्तमान समय में राजनीतिक पार्टियां जिस तरह सदस्यों के विचारों, गतिविधियों तथा जीवन पर अधिक-से-अधिक हावी होने का प्रयास करती रहती हैं, यह स्थिति बदलनी चाहिए। इस पार्टी का मानना है कि लोकतंत्र की भलाई इसी में है कि हर राजनीतिक पार्टी अपने सदस्यों को, पार्टी के मूलभूत सिद्धांतों को छोड़कर, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दे। यही कारण है कि स्वतंत्र पार्टी अपने सदस्यों को संसद, विधान सभा तथा अन्य सभी मंचों पर यह स्वतंत्रता प्रदान करती है, हर विषय पर पूर्ण स्वतंत्रता—सिद्धांतों एवं नीतिगत वक्तव्य को छोड़कर। अन्य पार्टियों में अपने से असहमत सदस्यों के साथ जैसा व्यवहार किया जाता है, उससे उलट स्वतंत्र पार्टी के सदस्यों को पार्टी की नीतियों के प्रतिपादन से संबंधित अपनी बात कहने का पूरा अवसर दिया जाता है।*

स्वतंत्र पार्टी के विकास के लिए उन्होंने जो मार्ग निर्धारित किया था, उसके बारे में वह एकदम स्पष्ट थे और पिटी-पिटाई लीक से हटकर सोच रहे थे।

1971 के आम चुनाव समय से एक वर्ष पहले करवा दिए गए थे क्योंकि इंदिरा गांधी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का विभाजन कर दिया था। अब एक से अधिक कांग्रेस पार्टियां थीं—कांग्रेस(आई) अथवा इंदिरा कांग्रेस और कांग्रेस(ओ) अथवा के.कामराज एवं मोरारजी देसाई जैसे व्यक्तियों द्वारा संगठित कांग्रेस, जिसे 'सिंडीकेट' भी कहा गया। कांग्रेस(ओ), जनसंघ, समाजवादी पार्टियों और स्वतंत्र पार्टी ने मिलकर एक गठजोड़ तैयार किया जिसे 'महान गठजोड़' (ग्रेंड अलॉयन्स) कहा गया और यह साझा न्यूनतम

---

* स्वतंत्र पाटी, पहला राष्ट्रीय अधिवेशन, मार्च 1960, महासचिव की रिपोर्ट, स्वतंत्र पार्टी के केंद्रीय कार्यालय द्वारा प्रकाशित।

कार्यक्रम तैयार करने में जुट गया। जार्ज फर्नांडीस और मधु लिमये द्वारा संचालित समाजवादी धड़े ने अचानक यह मांग रख दी कि हमें एक ऐसा नारा स्वीकार कर लेना चाहिए, जो सभी पार्टियों तथा देश को इंदिरा कांग्रेस हटाने के निमित्त एक कर दे, अतः यह नारा बना 'इंदिरा हटाओ'। मसानी तथा एन.दांडेकर, स्वतंत्र पार्टी के क्रमशः अध्यक्ष तथा महासचिव, जो गठजोड़ में अपनी पार्टी के प्रतिनिधि होने के साथ-साथ साझा कार्यक्रम तथा सीटों के बंटवारे पर भी काम कर रहे थे, इन दोनों ने इस बात पर एतराज जताया और राजा जी को कहा कि वह साझा कार्यक्रम के लिए सभी पार्टियों पर दबाव डालें और मात्र निषेधात्मक नारे पर निर्भर रहने से बचने के लिए कहें।

स्वतंत्र पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की मद्रास में 8 व 9 जनवरी, 1971 को बैठक हुई। मसानी तथा दांडेकर ने यह प्रस्ताव पारित करने के लिए कहा कि पार्टी गठजोड़ की सहयोगी बनने के बजाय केवल सीटों के बंटवारे को ही स्वीकृति दे। इसका घनघोर विरोध किया गया। इस विरोध का नेतृत्व प्रोफेसर रंगा ने किया और राजा जी ने इसका समर्थन किया। पहली बार मसानी अपने प्रस्ताव को पारित करवाने में विफल रहे।

राजा जी ने मसानी को आदेश दिया कि वह संधिवार्ता दल में वापिस लौट जाएं और सीटों के बंटवारे पर ही ध्यान दें, न कि साझा कार्यक्रम पर। मसानी ने इस काम के लिए अपनी असमर्थता व्यक्त की, तो राजा जी ने दांडेकर को पार्टी की ओर से समझौते की शर्तों पर काम करने के लिए कहा। स्वतंत्र पार्टी ने पिछले दो आम चुनावों में 170 उम्मीदवार खड़े किए थे, जबकि इस समझौते के अंतर्गत उन्हें केवल 59 निर्वाचन-क्षेत्रों में ही अपने उम्मीदवार खड़े करने के लिए कहा गया। इनमें से अंततः केवल आठ उम्मीदवार ही विजयी घोषित हुए। यद्यपि मसानी ने पहले ही चेतावनी दे दी थी कि साझा कार्यक्रम के बजाए निषेधात्मक नारे पर चुनाव लड़ने से अनर्थ होने की संभावना है, फिर भी, उन्होंने पार्टी के खराब प्रदर्शन की जिम्मेदारी खुद पर ले ली और अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया। इसके अलावा उन्होंने पार्टी राजनीति से भी संन्यास लेने की घोषणा कर दी।

पहली बार राजा जी तथा मसानी में किसी मूलभूत विषय को लेकर

आपस में मतभेद हुआ था। परिणामस्वरूप तीन वर्ष पश्चात यह पार्टी ही टूट गई। राजा जी इस दुर्घटना को देखने के लिए नहीं रहे थे। पर मसानी ने इसे देखा था। 14 अप्रैल, 1973 को (राजा जी की अनुपस्थिति में क्योंकि 25 दिसंबर, 1972 में ही उनकी मृत्यु हो गई थी) मद्रास में आयोजित पार्टी के छठे राष्ट्रीय अधिवेशन में उद्घाटन भाषण देने के लिए मसानी को आमंत्रित किया गया था। पार्टी का उत्साह तब पूरी तरह ध्वस्त हो चुका था। अतएव उन्होंने आशा तथा उमंग का संदेश देने की कोशिश की और याद दिलाया कि पार्टी अब भी सफलता की ओर बढ़ सकती है, यदि यह एक बार फिर अपने तटबंध पर इस निश्चय के साथ लौट आए कि यह "पार्टी अलग तरह की है।" ऐसा हो नहीं सका क्योंकि पीलू मोदी का नेतृत्व कुछ और ही सोच रहा था।

यह बात पूरे तौर पर तब स्पष्ट हो गई, जब स्वतंत्र पार्टी का सातवां और अंतिम अधिवेशन दिल्ली में अगस्त 1974 में आयोजित हुआ। राजनीति से संन्यास ले लेने के बावजूद वह इस अधिवेशन में शामिल हुए थे ताकि वह अपनी तयशुदा भूमिका निभा सकें यानी पार्टी को समाप्त करने का प्रस्ताव देने वालों के बजाए उसका विरोध करने वालों का नेतृत्व कर सकें। जो लोग 1 व 2 अगस्त, 1959 को पार्टी के प्रारंभिक अधिवेशन में बोले थे, उनमें से राजा जी सहित अधिकांश लोग अब जीवित नहीं थे। जो कुछ लोग बचे थे, वे मंच पर इस बात का समर्थन कर रहे थे कि पार्टी को समाप्त कर दिया जाए। मसानी की सलाह थी कि हमें जयप्रकाश नारायण के आह्वान की प्रतीक्षा करनी चाहिए जिन्होंने तब कुशासन एवं तानाशाह के खिलाफ एक अभियान छेड़ा हुआ था।

तब उस समय के नेतृत्व ने एक प्रस्ताव पेश कर पीलू मोदी को यह निर्णय करने का अधिकार दे दिया कि स्वतंत्र पार्टी को समाप्त कर देना चाहिए अथवा नहीं और इसके सदस्यों को चरण सिंह तथा राजनारायण द्वारा स्थापित एक नई पार्टी में जाना चाहिए अथवा नहीं। उनकी अपनी पार्टी भारतीय क्रांति दल दयनीय अवस्था में पहुंच चुकी थी क्योंकि 1971 के आम चुनावों में स्वतंत्र पार्टी की तरह इस पार्टी का प्रदर्शन भी बहुत खराब रहा था। मसानी का तर्क था कि शून्य में शून्य जमा करने से शून्य

ही रहता है, अतएव एक राष्ट्रीय पार्टी का भारतीय क्रांति दल जैसी क्षेत्रीय पार्टी में विलयन करना उचित नहीं है लेकिन उनकी बात को सबने अनसुना कर दिया। पहला कारण तो यह था कि मंच पर बैठे अधिकांश नेता विभिन्न राज्यों में पार्टी को चलाने संबंधी जिम्मेदारी को संभालने के लिए तैयार नहीं थे और दूसरा कारण यह था कि इस अधिवेशन पर पहले से ही एक तरह का कब्जा कर लिया गया था क्योंकि हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश से बसों में भर-भर कर प्रतिनिधियों को वहां जुटाया गया था। मसानी का यह प्रस्ताव कि पार्टी को समाप्त नहीं किया जाए, 50 वोटों से गिर गया। राजा जी तथा उन्होंने मिलकर जिस आशा तथा उत्साह से इस पार्टी की स्थापना की थी, वह अब शेष नहीं रही थी।

11

एक आदर्श सांसद

पाठक पहले ही जान चुके हैं कि मसानी लगभग 20 वर्षों तक संसद के सदस्य रहे थे। इस अवधि में वह एक वर्ष तक, 1945 में, विपक्ष में बैठे थे, जब 'सत्ता पक्ष' में ब्रिटिश वाइसराय तथा उनकी काउंसिल थी। तत्पश्चात 1946 से लगभग पांच वर्षों तक सत्ता पक्ष के गठजोड़ (इसमें कांग्रेस शामिल थी) के सदस्य के रूप में और फिर 1952 तक अंतःकालीन संसद के सदस्य के रूप में संसद में रहे, जो ब्रिटेन द्वारा कांग्रेस को सत्ता के हस्तांतरण की साक्षी भी रही थी। वह संविधान सभा के भी सदस्य रहे थे जिसने भारत का संविधान तैयार किया था। स्वतंत्र भारत में वह दूसरी लोक सभा के 1957 से 1962 तक सदस्य रहे थे और फिर एक साल के अंतराल के बाद 1963 से 1971 तक वह संसद में विपक्ष में बैठे थे। इतने विस्तार से इस ब्यौरे को देने का अर्थ यह है कि मसानी को अपने संसदीय कार्यकाल—उन्हें फेंस के दोनों तरफ बैठने का अनुभव रहा था—में सत्ता पक्ष के सदस्य के रूप में तथा विपक्ष के सदस्य के रूप में संसद में बैठने का अनुभव रहा था। इससे उनके मन में संसद के प्रति आदर-भाव जगा और उसे 'लोकतंत्र का मंदिर' स्वीकार करने की सुविधा बनी। इस अनुभव ने उन्हें एक अच्छा सांसद बनने का कौशल भी प्रदान किया। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि उन्हें इस बात का अहसास हुआ कि विपक्ष में बैठने वाले को सत्ता पक्ष को अपना दुश्मन नहीं मानना चाहिए; शासन चलाने और सरकार द्वारा कानून बनाने की प्रक्रिया में विपक्ष का भी उतना ही

योगदान होता है, जितना सरकार का—ब्रिटेन की 'हर मेजेस्टीज़ अपोज़ीशन' अथवा भारतीय संदर्भ में 'प्रेज़ीडेन्ट्स अपोज़ीशन' की अवधारणा पर आधारित।

लोक सभा में अनेक अवसरों पर उन्होंने स्वतंत्र पार्टी के उप-नेता के रूप में, एक वर्ष वह नेता भी रहे थे, सरकार को सहयोग कर उसे मदद की थी हालांकि उसकी नीतियों से वह सहमत नहीं थे।

हम पहले ही एक ऐसे अवसर की चर्चा कर चुके हैं, जब 1945 के नौसेना-विद्रोह के समय भारत में ब्रिटिश सरकार को परेशान करने के बजाय उन्होंने तत्कालीन सरकार को अपनी पार्टी का समर्थन यह कहते हुए दिया था कि सरकार को विद्रोहियों के साथ सख्ती से पेश आना चाहिए क्योंकि सैनिक बलों में हर कीमत पर अनुशासन रहना चाहिए।

जब इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री थीं, तब उन्होंने विदेशी मुद्रा की अनिश्चित स्थिति को देखते हुए रुपये के अवमूल्यन के लिए संसद की स्वीकृति चाही थी। विपक्ष को लगा कि इस मौके पर सरकार को झुकाया जा सकता है। विपक्ष के नेता होने के नाते उन्होंने अर्थशास्त्रियों, जिनमें प्रो.बी.आर.शेनाय भी शामिल थे, से परामर्श किया। इन लोगों का कहना था कि प्रधानमंत्री जो करना चाह रही हैं, वह युक्तिसंगत है। हां, सरकार को समर्थन देते समय यह आश्वासन भी लेना चाहिए कि अवमूल्यन की अनुवर्ती कार्रवाई भी की जाए ताकि इस स्थिति का दोबारा सामना न करना पड़े। मसानी ने स्वतंत्र पार्टी को इस बात के लिए राजी करवा लिया कि हमें सरकार के पक्ष में रहते हुए प्रस्ताव का समर्थन करना चाहिए। यह एक अलग मामला है कि सरकार ने अनुवर्ती कार्रवाई नहीं की। कहने का अर्थ यह है कि विपक्ष में रहते हुए भी स्वतंत्र पार्टी ने विरोध की खातिर विरोध नहीं किया। हर विषय पर गुणवत्ता के आधार पर तथा राष्ट्रीय हितों को देखते हुए निर्णय लिया गया और राजनीतिक लाभ उठाने की कोशिश नहीं की गई।

राजनीतिक और आर्थिक विषयों पर परस्पर मतभेद के बावजूद जवाहरलाल नेहरू तथा मसानी दोनों ही संसद के प्रति गहन एवं आवेशपूर्ण आदर से लबरेज़ थे। वे दोनों 'ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स' की तर्ज पर परंपराओं तथा मिसालों को विकसित करना चाहते थे। इनमें से एक परंपरा

थी अध्यक्ष के प्रति आदर-भाव। किस्सा प्रसिद्ध है कि एक बार नेहरू ने लोक सभा अध्यक्ष जी.वी.मावलंकर को बुला भेजा। अध्यक्ष ने यह कहते हुए जाने से इनकार कर दिया कि प्रधानमंत्री यदि मिलना चाहते हैं तो उन्हें अध्यक्ष के कक्ष में स्वयं आना होगा। नेहरू अध्यक्ष के कक्ष में गए और उनसे उन्होंने माफी भी मांगी। संसद की यह परंपरा आज भी चली आ रही है।

पर एक और परंपरा भी थी, मसानी चाहते थे, कि सभी इसका पालन करें। व्यवहार में यह परंपरा सिर्फ टूटती हुई ही दिखाई देती थी—वह परंपरा थी अध्यक्ष द्वारा निर्धारित समय से अधिक समय तक सदस्यों का बोलना। इस विषय पर मसानी की सोच निम्न प्रकार थी :

> मोटे तौर पर, यदि मुझे बिना जरूरत बोलने के लिए कहा जाता है तो मुझे इसके लिए सख्त एतराज रहता है। हां, तब स्थिति दूसरी होती है, जब मुझे कुछ कहना होता है या दूसरे शब्दों में कहें तो यह कि मेरे हृदय अथवा मस्तिष्क में कुछ घुमड़ रहा होता है और मैं उसे बताकर राहत महसूस करना चाहता हूं। जब तक उपरोक्त जरूरत नहीं हो तो मैं संसद अथवा अन्य किसी स्थान पर खड़े होकर बोलना शुरू नहीं कर देता। मेरा दूसरा एतराज बोलने वालों के समय को लेकर है। संसद के अधिकांश सदस्य अपने लिए निर्धारित समय के समाप्त हो जाने के बाद भी बोलते रहते हैं और अध्यक्ष को दो या तीन बार तक घंटी बजानी पड़ती है। उन्हें अपनी बात तब बिना गरिमा के समाप्त करनी पड़ती है, जब अध्यक्ष को झल्लाकर उन्हें अपनी बात तुरंत समाप्त करने के लिए कहना पड़ता है।
>
> अलबत्ता मैं एक दूसरे अतिरेक के संदर्भ में गलत साबित हो सकता हूं क्योंकि, मैं इस पुरानी कहावत का कायल हूं : 'उठो, बोलो, मुंह बंद कर बैठ जाओ।' कुल मिलाकर मैं अपनी बात निर्धारित समय के भीतर ही कह लेता हूं—भले ही यह समय सामान्य तौर पर 15 मिनट का हो अथवा अपनी पार्टी के प्रवक्ता के रूप में जब मुझे बजट पर बहस शुरू करनी हो अथवा अंतर्राष्ट्रीय विषयों पर बोलना हो, तब बोलने

> का समय प्रायः 45 मिनट तक का तय रहता है। वस्तुतः इस मामले को लेकर मैं इतना संवेदनशील हूं कि कभी-कभी तो मैं अपने लिए निर्धारित समय से पहले ही अपनी बात समाप्त कर देता हूं। मुझे याद है कि एक या दो बार सरदार हुकुम सिंह ने (जब वह अध्यक्ष थे) मुझ से पूछा था कि मैंने अपना भाषण अचानक समाप्त क्यों कर दिया है तो मेरा उत्तर होता था कि मैंने उन्हें अपनी कुर्सी पर अधीरता से आगे की ओर झुकते हुए देखा था। मुझे लगा कि वह घंटी बजाने ही वाले हैं। तब स्थिति को स्पष्ट करते हुए उन्होंने मुझे आश्वस्त किया कि उनका ऐसा कोई इरादा न था।

उनके लिए एतराज लायक एक बात यह भी थी कि अध्यक्ष के कुर्सी पर विराजे होने के बावजूद उठकर संसद से बाहर चल देना। ब्रिटिश परंपरा यह है कि अध्यक्ष की तरफ पीठ कर संसद से बाहर कोई नहीं जाता। मसानी की हमेशा कोशिश रहती थी कि जरूरत पड़ने पर वह पहले पीठ की तरफ रुख कर चलें और दरवाजे के पास पहुंचकर ही मुड़कर बाहर जाएं।

साठ और सत्तर के दशकों में एक अनुष्ठान की लगभग हर सत्र में पुनरावृत्ति हुई और यह था 'अविश्वास प्रस्ताव' का प्रस्तुत किया जाना—भले ही इस प्रस्ताव के गिर जाने की पूरी संभावना रही हो। मसानी अपनी पार्टी को यह समझाने में सफल रहे थे कि जब तक ऐसे प्रस्तावों के पक्ष में दृढ़ कारण न हो, तब तक इनको समर्थन न दिया जाए। वह खुद भी तब तक ऐसे प्रस्तावों का समर्थन करने को तैयार नहीं थे, जब तक इसका विकल्प उपलब्ध न हो। जुलाई 1970 में पेश ऐसे एक प्रस्ताव के संदर्भ में उन्होंने स्वतंत्र पार्टी की स्थिति को इस तरह स्पष्ट किया था :

> आप किसी-चीज के साथ न-कुछ से नहीं लड़ सकते। आपको किसी-चीज से बेहतर-चीज से लड़ना होगा। मैं इंदिरा गांधी को तब तक हटाने के पक्ष में नहीं हूं, जब तक मैं उनसे बेहतर प्रधानमंत्री तथा सरकार प्रस्तुत नहीं कर देता। मैं केंद्र में अव्यवस्था पैदा नहीं करना चाहता...इसलिए हम चाहते हैं कि वर्तमान सरकार को हटाने से पहले एक वैकल्पिक सरकार अस्तित्व में आ जाए।

एक और विषय था जिस पर समय-समय पर गुलगपाड़ा होता रहता था—यह था सांसदों का वेतन तथा भत्ते। जब-जब यह विषय आया, मसानी ने अपनी पार्टी को ऐसे प्रस्तावों का विरोध करने के लिए राजी कर लिया था क्योंकि उनका मानना था कि सांसदों द्वारा खुद ही अपना वेतन बढ़ाना सरासर अनुचित है। वह यह सवाल जरूर पूछते थे कि सांसदों ने ऐसा क्या किया है कि वह अपना वेतन बढ़ाना चाहते हैं।

1959 से 1970 के दौरान दस वर्षों तक उन्होंने वित्त विधेयक पर बहस की शुरुआत की थी जिसके बाद वार्षिक केंद्रीय बजट प्रस्तुत किया जाता है। उन्होंने यह काम बड़ी गंभीरता से निभाया था। बजट प्रस्तुत कर दिए जाने के तुरंत बाद वह उड़कर बंबई पहुंचते तथा व्यापारियों, उद्योगपतियों तथा विभिन्न वाणिज्य-मंडलों से विचार-विमर्श करते थे। यदि उन्हें जरूरी लगता तो वह इसी उद्देश्य से कलकत्ता तथा चेन्नई भी जाते थे। लोक सभा की दर्शक-दीर्घा उस समय पूरी भरी होती थी, जब वित्त मंत्री बजट प्रस्तुत करते थे। वित्त विधेयक पर होने वाली बहस के समय जब मसानी को बोलना होता था, उस समय भी दर्शक-दीर्घा भरी रहती थी। उनके सभी भाषण स्वतंत्र पार्टी के केंद्रीय कार्यालय द्वारा प्रकाशित किए जाते थे और इनका खूब प्रचार-प्रसार किया जाता था।

उनके बारे में ठीक ही कहा जाता है कि वह "हमारे प्रमुख सिद्धांतवादी थे जिन्होंने राज्य पूंजीवाद, योजना तथा नियंत्रण पर, जिसे संक्षेप में 'समाजवाद' के नाम से जाना जाता है, खुलकर प्रहार किया था।" उस दौर के यदि उनके बजट भाषणों का आज विश्लेषण किया जाए तो कुछ दिलचस्प तथ्य देखने को मिलेंगे जैसेकि आर्थिक विकास तथा कर-सुधारों के लिए उन्होंने जो सुझाव दिए थे, वे आज शासकीय नीतियों के रूप में स्वीकृत हैं; अनेक नियंत्रणों, परमिटों तथा लाइसेंसों को समाप्त करने की उन्होंने जो अपील की थी, 1990 के दशक में हम इन्हें ओझल होते देखने लगे थे। ये सभी स्वतंत्र पार्टी की नीतियां थीं, जिनका निरूपण वह संसद में साल-दर-साल दस वर्षों तक करते रहे थे।

इसी अध्याय में हम कहीं उल्लेख कर चुके हैं कि नेहरू व मसानी दोनों ही 'ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स' की अनेक परंपराओं तथा प्रथाओं

को यहां लागू करना चाहते थे। इनमें से एक परंपरा यह थी कि महत्वपूर्ण वित्तीय समितियों जैसेकि लोक लेखा समिति और प्राक्कलन समिति का अध्यक्ष पद विपक्ष के सदस्यों को सौंपा जाता है। सन् 1967 तक भारत में इस प्रथा की उपेक्षा की जाती रही थी और भारी बहुमत के कारण कांग्रेस ने "तीनों वित्तीय समितियों की अध्यक्षता अपने कब्जे में की हुई थी," अर्थात उपरिलिखित दो समितियों के अलावा लोक उपक्रम समिति की भी। 1967 के चुनावों में, अपेक्षाकृत कम बहुमत के कारण, कांग्रेस को इस व्यवस्था के लिए राजी होना पड़ा कि संसद के अध्यक्ष लोक लेखा समिति की अध्यक्षता के लिए विपक्ष के किसी सदस्य को नामांकित करेंगे और कांग्रेस के सदस्य बाकी की दो समितियों के लिए नामांकित किए जाएंगे। विपक्ष के सबसे बड़े दल के नेता होने के कारण पूरे विपक्ष के वास्तविक नेता भी वही थे, अतः अन्य पार्टियों की सहमति से अध्यक्ष महोदय ने 1967 से 1969 तक मसानी को लोक लेखा समिति का अध्यक्ष नामांकित कर दिया। वस्तुतः यह पद एक वर्ष के लिए ही था परंतु अध्यक्ष महोदय ने एक वर्ष पूरा होने पर उन्हें एक वर्ष और इस पद पर बने रहने का अनुरोध किया। उन्होंने मसानी को बताया कि वह यह अनुरोध इसलिए कर रहे हैं क्योंकि उन्हें कांग्रेस तथा अन्य पार्टियों के नेता और समिति से संबद्ध सचिवालय के स्थायी अधिकारियों ने आपको एक और वर्ष के लिए राजी करवाने के लिए कहा है। "इन दोनों वर्षों में," मसानी ने लिखा है, "एक बार विषय की वस्तुगत समीक्षा कर लेने के बाद समिति इस बात के लिए दृढ़ संकल्प थी कि वही किया जाए जो उचित हो। इससे समिति का कामकाज प्रभावशाली तथा सुव्यवस्थित ढंग से होने लगा, अतः सदस्यों के विभिन्न पार्टियों से आने के बावजूद सर्वसम्मति से रिपोर्ट तैयार होने लगी।"

संसद का कोई भी सदस्य बल्कि कोई भी विधायक न केवल सदन में अपने काम के लिए जवाबदेह होता है, वह अपने निर्वाचन-क्षेत्र के प्रति भी जवाबदेह होता है जिसने उसे चुनकर भेजा है। 1963 से 1971 तक उन्होंने राजकोट संसदीय निर्वाचन-क्षेत्र का प्रतिनिधित्व किया था। उन्होंने अपने मतदाताओं से वादा किया था कि वह हर महीने तीन दिनों के लिए

राजकोट आएंगे—स्वास्थ्य कारणों अथवा विदेश में होने के मौकों को छोड़कर। उन्होंने अपना यह वादा निभाया और पूरी नियमितता से निभाया। वहां उन्होंने अपना कार्यालय बनाया हुआ था, जो एक पूर्णकालिक सचिव की देख-रेख में चलता था ताकि निर्वाचकों के साथ उनका संपर्क हमेशा बना रहे। उन्होंने एक वादा और किया था कि लोक सभा में अपने काम तथा निर्वाचन-क्षेत्र से संबंधित शिकायतों के बारे में उन्होंने जो कदम उठाए हैं, इन सब के बारे में नियमित रूप से वह रिपोर्ट पेश करते रहेंगे। इसे भी उन्होंने निभाया तथा नियमित रूप से निभाया। उन्होंने बंबई में गुजराती जानने वाले एक ऐसे व्यक्ति को काम पर रखा था, जो राजकोट से प्रकाशित समाचार-पत्र पढ़कर उन्हें उस निर्वाचन-क्षेत्र में किए जाने वाले विकास-कार्यों से अवगत कराता रहता था और जहां जरूरत होती थी, वहां वह तुरंत ऐसी कार्रवाई करते भी थे।

12

जेपी, संपूर्ण क्रांति, आपातकाल और उसके बाद

जून 1971 में मसानी ने स्वतंत्र पार्टी की अध्यक्षता से त्यागपत्र दे दिया और तीसरी व अंतिम बार राजनीति से संन्यास लेने की घोषणा की। उन्होंने राजनीति से पहला संन्यास 1939 में लिया था, जो 1942 तक निभा; दूसरा संन्यास 1952 में लिया, जब उन्होंने कांग्रेस को छोड़ा और पार्टी की सदस्यता का नवीकरण न करवाकर उसे निभाया। पर यह संन्यास 1957 तक ही निभा। इसके बाद वह राजनीति में पुनः आ गए और लोक सभा के सदस्य बने।

इस समय के आसपास उनके मित्र तथा कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में उनके नेता जयप्रकाश नारायण, जो तब सर्वोदय आंदोलन में सक्रिय थे और पार्टी-विहीन लोकतंत्र में जिनका विश्वास बना हुआ था, दिल्ली की केंद्रीय सरकार के सत्तावादी रुख तथा बिहार के असहनीय भ्रष्टाचार एवं अक्षम शासन को लेकर बहुत विचलित थे। वह विद्यार्थियों के नेतृत्व में जनता की विरोध रैलियों का आयोजन कर रहे थे। जेपी का बिहार तक सीमित अहिंसक आंदोलन शीघ्र ही देशव्यापी आंदोलन में बदल गया जिसमें व्यवस्था में परिवर्तन, संपूर्ण क्रांति, का आह्वान किया गया था। बिहार की ही तरह सभी जगह, इस आंदोलन का नेतृत्व युवा स्त्री-पुरुषों के हाथों में था जिन्होंने छात्र युवा संघर्ष वाहिनियों का गठन कर लिया था। इनमें लोगों की भागीदारी अभूतपूर्व थी। जेपी राष्ट्रीय परिदृश्य पर एक बार फिर से महान नेता के रूप में दिखाई देने लगे थे और इंदिरा गांधी के नेतृत्व में सक्रिय कांग्रेस

के विकल्प के रूप में उभरने लगे थे। पहले तो बिहार सरकार तथा जेपी के बीच संघर्ष की स्थिति बनी और शीघ्र ही जेपी तथा प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के बीच—जिनके सत्ता में बने रहने के अधिकार को गंभीर चुनौती दी जा रही थी। केंद्र सरकार द्वारा समर्थित बिहार के मुख्यमंत्री ने इन व्यापक प्रदर्शनों को दबाने तथा जेपी पर हमले तक की योजना बनाई। संपूर्ण क्रांति आंदोलन की अंतर्कथा सुधांशु रंजन द्वारा लिखित जीवनी *जयप्रकाश नारायण, प्रॉफेट ऑफ पीपुल्स पावर* (नेशनल बुक ट्रस्ट) और मसानी की पुस्तकों *इज़ जेपी द आन्सर?* और *जेपी'ज़ मिशन पार्टली एकम्पलिश्ड* में देखी जा सकती है।

यद्यपि मसानी ने संपूर्ण क्रांति आंदोलन में भाग नहीं लिया था क्योंकि उन्होंने सक्रिय राजनीति से संन्यास लिया हुआ था, फिर भी, उन्होंने एक इतिहासकार की भूमिका निभाई थी और एक ओर जहां जनता के लिए इस आंदोलन की समीक्षा प्रस्तुत की थी, वहीं उन्होंने जेपी (और इंदिरा गांधी की भी) रचनात्मक आलोचना कर संघर्ष के दुष्परिणामों के रूप में जेपी तथा देश को होने वाले नुकसान से सावधान भी किया था। उन्हें लगता था कि लोकतंत्र ही खतरे में है। अपनी पुस्तक *इज़ जेपी द आन्सर?* में उन्होंने चेतावनी दी थी : "तत्काल विजय, शासन में रहते हुए, उन्हीं लोगों के लिए संभव हो सकेगी जो सत्ता को हथिया लेते हैं और तानाशाही लागू कर देते हैं, फिर ब्रिटिश शासन द्वारा इस देश में किए गए दमन से भी कहीं अधिक नृशंस दमन-चक्र शुरू कर देते हैं।" क्योंकि जेपी की सरकार में रहकर नेतृत्व करने में दिलचस्पी नहीं थी, और "एक को पदच्युत कर दूसरे को ले आने की होड़ के बजाए दोनों के सत्ता में समान स्तर पर बने रहने पर जोर था," अतः जेपी और इंदिरा गांधी में सामंजस्य बनाने की संभावना थी।

दुर्भाग्यवश, शांति के प्रयासों के विरुद्ध घटनाएं घट गईं। 12 जून, 1975 को एक चुनाव अपील पर फैसले के रूप में, इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने, इंदिरा गांधी का चुनाव रद्द कर दिया। जब उन्होंने फैसले को मानने से इनकार कर दिया तो जेपी तथा विपक्ष की अन्य पार्टियों ने उनके निवास के बाहर प्रदर्शन करने का निर्णय लिया और 25 जून को एक रैली निकाल

कर उन्हें त्यागपत्र देने के लिए विवश करने की ठानी। इंदिरा गांधी ने तत्काल कुछ कदम उठाए और देश में आपात स्थिति की घोषणा कर दी और 25 जून की आधी रात को जेपी तथा विपक्ष के नेताओं के साथ-साथ हजारों कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। मसानी ने इसे "संवैधानिक रूप से तख्ता उलट देना" कहा और देश आने वाले 18 महीनों तक तानाशाही की गिरफ्त में रहा।

मसानी, इंदिरा गांधी के 'विप्लव' को, कम्युनिस्ट अथवा फासीवादी अधिनायकत्व नहीं मानते थे बल्कि वह इसे सत्तावाद का एक सीमित रूप मानते थे, जो सर्वाधिकारवाद में अथवा फिर से लोकतांत्रिक प्रक्रिया में परिवर्तित हो सकता था। दूसरे शब्दों में, यह स्थिति फिर से बदल सकती थी। "ऐसी परिस्थिति में," उन्होंने पूछा, "एक उदार लोकतंत्रवादी की उचित भूमिका क्या होनी चाहिए? उन्होंने कहा, "उदारवादी को न तो ऐसी स्थिति में रोमानी होना चाहिए, न ही उसे डरना चाहिए। उसे न्याय की सीमा में रहते हुए, जहां तक संभव हो, नागरिक अधिकारों की रक्षा करनी चाहिए और स्वतंत्रता की सीमाओं को विस्तार देना चाहिए। ऐसे वातावरण में सामान्य संयम और साहस उपचार का काम करता है।" ऐसी सलाह देने के पीछे उनका कारण यह था कि भारतीय लोग, ब्रिटिश शासन के समय में भी, इतने डरे हुए नहीं थे जितना वे आपातकाल की घोषणा से डर गए थे। "चारों ओर साहस का ऐसा अभाव दिखाई दे रहा था, जिसकी कल्पना तक नहीं की जा सकती थी," उन्होंने लिखा था।

"उदारवादी, इतिहास के अनुभवों को ध्यान में रखते हुए, इस तथ्य को जानता है कि ऐसे विकास के ऐतिहासिक कारण होते हैं और इस आसुरी व्यवहार से अंतिम निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते। अतएव उदारवादी इस बात का प्रयास करता है कि प्रतिद्वंद्वी दलों के बीच के समान रास्ते को खोजा जाए और विभाजित राष्ट्र के घावों का उपचार किया जाए।" स्पष्ट है कि वह स्वयं के लिए एक ऐसा उचित साधन जानना चाहते थे जिसके अनुसार व्यवहार किया जा सके।

मसानी उन दिनों *फ्रीडम फर्स्ट*, 1952 में उनके द्वारा स्थापित, मासिक पत्रिका के संपादक थे। आपातकाल अधिनियमों के अधीन सभी समाचार-पत्र

तथा पत्रिकाएं सेंसरशिप के लिए प्रस्तुत की जाती थीं। जब सेंसर ने *फ्रीडम फर्स्ट* की कुछ सामग्री के लिए आपत्ति जताई तो मसानी ने अपने मासिक पत्र के प्रकाशन को स्थगित कर दिया और एक पत्र लिखकर अपने पाठकों को सूचित किया कि पूर्व-सेंसरशिप उन्हें मंजूर नहीं है और वह इसका न्यायिक प्रतिकार करेंगे। उन दिनों के भय से ग्रस्त वातावरण में वकील ढूंढ़ने में ही एक सप्ताह लग गया। अंततः उन्हें सोली सोराबजी वकील मिला, जिन्हें मसानी ने "विपत्ति में फंसे संपादकों के चैंपियन" की संज्ञा दी है। सोली सोराबजी ने सेंसर के खिलाफ दलीलें पेश कीं और बंबई उच्च न्यायालय ने *फ्रीडम फर्स्ट* के पक्ष को उचित ठहराया और सेंसर की अधिकांश दलीलों को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि ये स्वैच्छिक तथा गैर-जरूरी हैं।

अपनी पुस्तक *द लॉ ऑफ प्रेस सेंसरशिप इन इंडिया* में सोली सोराबजी ने आपातकाल के पहले कुछ हफ्तों की स्थिति का आकलन कुछ इस तरह किया है :

> सभी के दिमाग में यह प्रश्न सर्वोपरि था कि विरोध प्रकट करने की उन्हें अनुमति है अथवा नहीं, और यदि है, तो इसकी सीमा क्या है। उस समय की जरूरत तो यह थी कि इस विषय पर कोई आधिकारिक कानूनी फैसला सामने आए। परंतु न्यायालय किसी विषय पर कोई वास्तविक विवाद उठे बिना कानूनी फैसला नहीं दे सकते, अतः किसी-न-किसी को इसके लिए पहल करनी जरूरी थी। ऐसा साहसिक कार्य कौन करेगा? तो यह मीनू मसानी ही थे जिन्होंने इस चुनौती को स्वीकार किया।

अक्तूबर 1975 में, जो आपातकाल का चौथा महीना था, मसानी ने अखिल भारतीय नागरिक स्वतंत्रता अधिवेशन अहमदाबाद में भाषण देने का निमंत्रण स्वीकार कर लिया। इसे आपातकाल के खिलाफ बोलने का अवसर मानते हुए उन्होंने कहा कि आपातकाल की घोषणा असल में उस स्थिति का चरमोत्कर्ष है, जो स्वतंत्रता के बाद से ही बनी हुई है। "सबसे पहले सार्वजनिक जीवन का स्वरूप, फिर हमारे लोकतंत्र की नाजुक स्थिति और आम सदस्यों के स्तर पर सतर्कता तथा स्वयंसेवी संगठनों का अभाव—इन सभी की अनुपस्थिति में राजनीतिक पार्टियां ऊपर-ऊपर तैरती तो जरूर

दिखाई देती हैं लेकिन नीचे उनकी कोई जड़ें नहीं हैं।" दूसरी बात यह है राज्य के हाथों में विपुल आर्थिक शक्ति के होने से लोकतंत्र के साथ उसका तालमेल नहीं बैठता है। "हिटलर किसी दुर्घटना के फलस्वरूप नहीं हुआ था, स्तालिन शून्य से पैदा नहीं हुआ था। ये लोग शिखर पर इसलिए आ पाए थे क्योंकि कुछ सामाजिक व आर्थिक स्थितियां ऐसी थीं जिनसे इन्हें यह स्थान प्राप्त हो गया था और जिसका इन्होंने फायदा उठाया था...इस ऐतिहासिक अन्वेषण के संदर्भ में हमें अपने लोगों के पतन में अपनी भूमिका को स्वीकार करना होगा।"

तेजी से गिरते स्वास्थ्य के कारण, जेपी को रिहा कर, उन्हें जसलोक अस्पताल में भरती करवा दिया गया। मसानी के बहुत अनुनय करने पर जेपी ने सोली सोराबजी तथा नोटरी पब्लिक के सामने इसी अस्पताल में 'राजनीतिक वसीयत' पर अपने हस्ताक्षर किए थे। अगर जेपी का देहांत हो जाता तो इस वसीयत को प्रकाशित कर देने की बात थी। चंडीगढ़ में साढ़े चार महीने के एकांत कारावास से उनके गुर्दों को बहुत नुकसान पहुंचा था और डाक्टरों के अनुसार उनकी स्थिति बहुत नाजुक थी।

जब जेपी ने 1974 में भ्रष्टाचार तथा कुशासन के विरुद्ध आंदोलन शुरू किया था, तब विपक्ष की पार्टियों के नेता, कम्युनिस्टों को छोड़कर, उन्हें प्राप्त जनता के व्यापक समर्थन कों देखकर बहुत प्रभावित हुए थे। इसी को ध्यान में रखते हुए जेपी ने 1975 के शुरू में मसानी को विपक्ष के नेताओं की समन्वय समिति का सदस्य बनने के लिए आमंत्रित किया था। मसानी ने चार वर्ष पहले के दुखद अनुभव को याद करते हुए, जब विपक्ष के इन्हीं नेताओं के 'महा गठजोड़' ने उनकी अपील और विरोध के बावजूद साझा कार्यक्रम को ठुकरा दिया था और 'इंदिरा हटाओ' नारे को अपना लिया था, इस अनुरोध को उन्होंने विनम्रता से अस्वीकार कर दिया। इसी समन्वय समिति के सदस्य बाद में नई दिल्ली में जनता पार्टी की सरकार में भागीदार बने थे। इस पर विस्तार से बाद में विचार करेंगे।

इस बीच 18 जनवरी, 1977 को इंदिरा गांधी ने एक विस्मयकारी चाल चली और लोक सभा को भंगकर मार्च में आम चुनाव कराने की घोषणा कर दी। यद्यपि आपातकाल संबंधी अधिनियम हटाए नहीं गए थे, पर

चुनाव-प्रचार तथा चुनावों के दौरान इन पर अमल भी नहीं किया गया था। जेपी ने विपक्ष की पार्टियों के नेताओं की समन्वय समिति की तुरंत बैठक बुलाई और मसानी को एक बार फिर से आमंत्रित किया ताकि वह बहस में हिस्सा ले सकें। मसानी ने दोबारा उनके आमंत्रण को ठुकरा दिया क्योंकि उन्हें इस बात का पूरा यकीन था कि इन नेताओं में यथोचित समय तक साथ बने रहने की क्षमता नहीं है अथवा इनमें साथ बने रहने की इच्छा का अभाव है। उन्होंने लिखा है, "इतिहास की मेरी समझ यही कहती थी कि जेपी और भारत की जनता इस सिद्धांत की असफलता तथा घोर निराशा का सामना करने जा रही है कि जो कुछ घटित हुआ है (चुनावों में जनता पार्टी की अभूतपूर्व सफलता), वह भारत की दूसरी स्वतंत्रता है।" वह एक बार फिर सही साबित हुए थे।

महान खुशी तथा अपेक्षाओं से लैस होकर जनता पार्टी ने दिल्ली में अपना कार्यालय खोला। इस पार्टी से निराश मसानी तक ने यह उम्मीद लगा रखी थी, "आपातकाल के आघात पहुंचाने वाले अनुभव और यह तथ्य कि इनमें से अधिकांश नेता एक ही समय जेलों में बंद थे, इन गैर-कांग्रेसी पार्टियों के राजनीतिज्ञों को लीक से हटाकर अपने पुराने तरीकों व सोच को बदलने के लिए प्रेरित करेंगे और गांधी जी के शब्दों में कहें तो इनका 'हृदय परिवर्तन' हो जाएगा।"

मसानी ने 16 अगस्त को बांबे रोटरी क्लब की एक बैठक में खुले तौर पर अपनी आशंकाओं को व्यक्त किया था। अतएव उन्हें तब बड़ा आश्चर्य हुआ, जब भारत सरकार के गृह सचिव ने फोन पर उन्हें बताया कि प्रधानमंत्री और गृह मंत्री नवगठित अल्पसंख्यक आयोग के अध्यक्ष पद पर उन्हें नामांकित करना चाहते हैं। यह तीन व्यक्तियों का आयोग होगा और इस आयोग के अन्य सदस्य होंगे : आर.ए.अंसारी, जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय के अवकाश-प्राप्त मुख्य न्यायाधीश, और प्रोफेसर वी.वी. जॉन, राजस्थान विश्वविद्यालय के उप-कुलपति। मसानी ने अपने नामांकन के लिए दो शर्तें रखीं अर्थात वह कोई पारिश्रमिक नहीं लेंगे क्योंकि वह सरकारी कर्मचारी नहीं बनना चाहते और न ही सरकारी कर्मचारियों पर लागू शर्तों के अधीन आना चाहते हैं। दिल्ली में उनके निवास तथा यात्राओं

पर होने वाले व्यय की क्षतिपूर्ती वह जरूर चाहेंगे। दूसरे, अल्पसंख्यक आयोग को सांविधिक निकाय का दर्जा प्राप्त होना चाहिए ताकि वह स्वतंत्र रूप से काम कर सके।

उनकी दोनों शर्तें स्वीकार कर ली गईं और 23 फरवरी, 1978 को वह अल्पसंख्यक आयोग के अध्यक्ष नियुक्त कर दिए गए। तीन महीने बाद ही, 31 मई, 1978 को, मसानी ने इससे त्यागपत्र दे दिया। अपनी इस कार्रवाई के उन्होंने तीन कारण बताए :

1. आयोग को यह आश्वासन दिया गया था कि सरकार अल्पसंख्यकों से संबंधित सभी विषयों पर आयोग से परामर्श करेगी और आयोग की सिफारिशों को पर्याप्त महत्व देगी। पहले ही अवसर पर सरकार ने आयोग की उपेक्षा कर दी, जब उसे अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अधिनियम को संशोधित करना था। इस तरह उपेक्षित किए जाने के बावजूद आयोग ने अपने तौर पर मामले को सुलझाने की सोची और मुस्लिम विश्वविद्यालय के उप-कुलपति तथा अन्य संबंधित लोगों से मुलाकात की और सरकार को अपनी रिपोर्ट सौंपी। सरकार ने यह रिपोर्ट संसद सदस्यों में वितरित नहीं की। जब अल्पसंख्यक आयोग की रिपोर्ट की सिफारिशों के बारे में जनता को पता लगा, खासतौर पर इस सिफारिश के बारे में कि अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय मुस्लिम संस्थान है और इसकी सांस्कृतिक अस्मिता सुरक्षित रखी जानी चाहिए, तब सरकार ने संसद को सूचित किया कि आयोग की सिफारिशों को सरकार ने अस्वीकार कर दिया था।
2. भारत के संविधान में संशोधन से संबंधित कोई विधेयक नहीं रखा गया ताकि अल्पसंख्यक आयोग सांविधिक निकाय बन सके और उसे कानूनी अधिकार प्राप्त हो जाएं। आखिर यह स्पष्ट हो गया कि सरकार का ऐसा करने का कोई इरादा नहीं है।
3. यह तय हुआ था कि आयोग कार्यपालिका से स्वतंत्र रहेगा। इसके बावजूद इसे गृह मंत्रालय से संबद्ध माना जा रहा था। तीन महीनों के बाद भी आयोग को न तो कोई कार्यालय उपलब्ध करवाया गया और न ही पर्याप्त स्टॉफ मुहैया करवाया गया।

स्वतंत्र भारत में अल्पसंख्यक आयोग की अध्यक्षता एकमात्र ऐसा सरकारी पद था, जिसे मसानी ने संभाला था। हां, इससे पहले अपेक्षाकृत लंबे समय तक, 1948 में वह 18 महीनों तक, ब्राजील में भारत के राजदूत जरूर रह चुके थे। मसानी बंबई लौट आए और उन्होंने प्रबंधन सलाहकार के रूप में अपना व्यवसाय फिर से शुरू कर दिया; अपने मित्र सी.आर. ईरानी द्वारा संपादित समाचार-पत्र *द स्टेट्समैन* में स्तंभ लिखना शुरू किया और उन्हें इतनी अधिक स्वतंत्रता दी गई कि वह जिस विषय पर जो चाहें लिख सकते थे; लिबरल इंटरनेशनल की बैठकों में भाग लेने के लिए उन्होंने विदेश यात्राएं कीं, जिसके वह संरक्षक भी थे। इसके अलावा 1981 तक उन्होंने अपने राजनीतिक संस्मरणों के दो खंड भी पूरे कर लिए थे।

मई 1981 में उन्होंने 'सोसाइटी फॉर द राइट टू डाई विद डिग्निटि' (गरिमा के साथ मरने के अधिकार की सोसाइटी) की स्थापना की ताकि वह यह प्रचार कर सकें कि वे लोग जो मरने के करीब हैं, यदि वे चाहें तो अपने जीवन को समाप्त करने का अधिकार पा सकें। 1985 में उन्होंने लेस्ली साहनी प्रोग्राम फॉर ट्रेनिंग इन डेमोक्रेसी (लेस्ली साहनी लोकतंत्र प्रशिक्षण कार्यक्रम) में आर्थिक शिक्षा परियोजना को शामिल कर एक नया आयाम जोड़ा। वह आर्थिक परिवर्तन की पहली हवा के बहने को महसूस कर रहे थे और उन्हें लगा कि विभिन्न राजनीतिक पार्टियां—भले ही सत्ता में हों अथवा सत्ता से बाहर—इस परिवर्तन की जरूरत महसूस करें अथवा नहीं, भारत को समाजवाद को त्यागकर अब मुक्त अर्थव्यवस्था की ओर आगे बढ़ना ही होगा। इस मौके का फायदा उठाते हुए वह बुनियादी आर्थिक विषयों के बारे में लोगों को शिक्षित करना चाहते थे ताकि लोग आर्थिक क्षेत्र में होने वाले परिवर्तन को समझकर उसका स्वागत करें, न कि विरोध। इसके लिए जरूरत थी बहसों, संगोष्ठियों तथा सम्मेलनों को आयोजित करने की, साथ ही विभिन्न विषयों पर—आर्थिक से लेकर अन्य अनेक व्यापक विषयों पर, जो अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डालते हैं— पेपर प्रकाशित करवाने की।

और 1989 में उन्होंने अपनी अंतिम पुस्तक *वी इंडियन्स* लिखी—एक बार फिर बच्चों के लिए। सन् 1944 में लिखित *ऑवर इंडिया* को यदि

हम प्रस्तावना कह सकते हैं तो *वी इंडियन्स* को उपसंहार। *वी इंडियन्स* उनका अंतिम बड़ा काम था क्योंकि उनकी नजर अब खत्म होने लगी थी। देश तथा विदेश के डाक्टरों को दिखाने के बाद उन्हें यही सलाह मिली कि अब इसके ठीक होने की कोई उम्मीद नहीं। लाक्षणिक अर्थ में उनकी मृत्यु तो तभी हो गई थी, जब उन्हें लगा कि वह अब न तो पढ़ सकते हैं, न लिख सकते हैं। लंबी बीमारी के बाद उनकी भौतिक मृत्यु 27 मई, 1998 को हुई और उनकी इच्छा के अनुरूप बंबई के चंदनवाड़ी श्मशान में बिना किसी दिखावे और धार्मिक संस्कारों के उनका अंतिम संस्कार कर दिया गया।

मीनू मसानी द्वारा लिखित पुस्तकें तथा पैम्फलेट

1939 *इंडिया'ज़ कांस्टिट्यूशन एट वर्क* (सी.वाई.चिंतामणि के साथ)
सोवियत साइडलाइट्स
1940 *ऑवर इंडिया*
1944 *सोशलिज़्म रिकंसिडर्ड*
युअर फूड
1945 *पिक्चर ऑफ अ प्लैन*
1947 *अ प्ली फॉर अ मिक्स्ड इकॉनामी*
1950 *ऑवर ग्रोइंग ह्यूमन फैमिली*
को-आपरेटिव फार्मिंग, द ग्रेट डिबेट
1951 *न्यूट्रलिज़्म इन इंडिया*
1954 *द कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया—अॅ शार्ट हिस्ट्री*
1967 *द कांग्रेस मिसरूल एंड स्वतंत्र आल्टर्नेटिव*
1969 *टु मच पालिटिक्स, टु लिटिल सिटिज़नशिप*
1970 *लिबरल्ज़िम*
1975 *द कांस्टिट्यूशन, ट्वेंटी इयर्स लेटर*
इज़ जेपी द आन्सर?
1977 *जेपी'स मिशन पार्टली एकॉम्पलिश्ड*
1977 *ब्लिस वाज़ इट इन दैट डॉन...*
1981 *अगेन्स्ट दि टाईड*
1989 *वी इंडियन्स*

शिवम् ऑफसैट प्रेस, ए-12/1, नरायणा इंडिस्ट्रयल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित।

यह पुस्तक भारत के एक विशिष्ट व्यक्ति मीनू मसानी की जीवनी है। स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेने वाले, विचारक, लेखक, सांसद और राजनीतिज्ञ मीनू मसानी द्वारा बच्चों के लिए लिखी गई पुस्तक *ऑवर इंडिया* के प्रकाशित होते ही वह रातोंरात प्रसिद्ध हो गए थे। बेस्टसैलर के रूप में बिकने वाली इस पुस्तक ने भारत के राष्ट्रीय गौरव को स्थापित किया था। मसानी संविधान सभा के सदस्य थे। 1957 और 1971 में वह लोकसभा के सदस्य भी बने। वह एक विचारक और सिद्धांतवादी राजनीतिज्ञ के रूप में हमेशा याद किए जाएंगे। उनकी बौद्धिक पहुंच मार्क्स से गांधी तक फैली हुई थी और वह स्वतंत्र पार्टी की स्थापना में सी. राजगोपालाचारी के निकटस्थ सहयोगी रहे थे। चौथी लोकसभा में स्वतंत्र पार्टी विपक्ष की सबसे बड़ी पार्टी थी। स्वतंत्र भारत में उदारतावादी आंदोलन के वह वरिष्ठ नेता रहे थे। 1971 में राजनीति से संन्यास ले लेने के बाद भी उन्होंने अपने द्वारा संपादित पत्रिका *फ्रीडम फर्स्ट* के माध्यम से आपातकाल का जोरदार विरोध किया था। संक्षेप में उनका जीवन मूल्यों पर आधारित राजनीति की गाथा है।

मुंबई विश्वविद्यालय से राजनीतिशास्त्र में स्नातकोत्तर **एस.वी.राजू** 1959 से 1998 के दौरान लगभग चार दशकों तक प्रमुख, नियोक्ता, 'लुप्त उद्देश्यों' के सहयोगी और मीनू मसानी द्वारा गठित अनेक संगठनों के प्रबंधक-मित्र के रूप में मीनू मसानी के निकट सहयोगी रहे। इस पुस्तक में उन्होंने अपने अंतरंग परिचय को आधार बनाकर मीनू मसानी होने के फायदे और नुकसान का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है।

इस पुस्तक के अनुवादक **सौमित्र मोहन** (1938) हिंदी के प्रतिष्ठित कवि हैं। एक दर्जन से अधिक पुस्तकों का अनुवाद कर चुके कवि की पुस्तक 'लुकमान अली तथा अन्य कविताएं' को साठोत्तरी कविता का प्रतिनिधि संकलन माना जाता है।

एकः सूते सकलम्

रु. 50.00

ISBN 978-81-237-5740-7

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया